

# अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-05, 16-31 अक्टूबर, 2015

“पुरुष ने नारी को दबा दिया है। उसका विकास होने नहीं दिया। इस पाप का प्रायश्चित्त उसे करना ही चाहिए। लेकिन वह होगा खुद के कल्याण के लिए ही, अपने ही उद्धार के लिए; स्त्री पर मेहरबानी, कृपा या करुणा के रूप में नहीं। स्त्री का उद्धार पुरुष कर नहीं सकता। वह तो उसे स्वयं ही करना होगा। दूसरे के मरने से हमें स्वर्ग नहीं दीखेगा।”

— दादा धर्माधिकारी

अहिंसक-क्रांति-पाठ्य-क्रम-प्र  
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)  
द्वारा प्रकाशित

## अहिंसक क्रांति का पाठ्य-क्रम-प्र सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक  
वर्ष : 39, अंक : 05, 16-31 अक्टूबर, 2015

संपादक  
बिमल कुमार  
मो. : 9235772595

संपादक मंडल  
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय  
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र  
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)  
फोन : 0542-2440-385/223  
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com  
Website : sssprakashan.com

शुल्क  
मूल्य : पांच रुपये  
वार्षिक : 100 रुपये  
आजीवन : 1000 रुपये  
खाता संख्या : 383502010004310  
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर  
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये  
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये  
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

### इस अंक में...

1. संपादकीय : अहिंसक-क्रांति और... 2
2. महिला : एक विधायक शक्ति... 3
3. कविता : तज ममता की मूरत... 4
4. स्त्री : समाज की धुरी... 5
5. भय छोड़ दें... 6
6. हिमालय में वनों की व्यावसायिक... 10
7. गांधीजी का पर्यावरण मंत्र... 11
8. क्या कर्तव्यहीन मनुष्य धरती पर... 14
9. जीवन की किताब क्या कहती है?... 16
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविता एवं गजल... 20

### संपादकीय

## अहिंसक-क्रांति व स्त्री-शक्ति

स्त्री-शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान परिवार में एवं समुदाय में अति प्राचीन काल से रहा है। राजसत्ता के उदय के बाद, राजसत्ता संचालन में पुरुषों का स्थान ज्यादा हो गया। इन दो तरह की सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच स्त्री व पुरुष की भूमिका में अंतर का निम्न कारण है—परिवार और समुदाय सहमति एवं नैतिकता के आधार पर चलते थे तथा उनके सदस्यों के बीच प्रेम, सहयोग, सेवा तथा सामूहिक सुरक्षा मुख्य भाव हुआ करते थे। दूसरी ओर राजसत्ता के मूल में हिंसा शक्ति (अर्थात् सैन्य-शक्ति व दण्ड-शक्ति) थी। जैसे-जैसे हिंसा शक्ति का संगठन मजबूत होता गया, वैसे-वैसे राजसत्ता के क्षेत्र से प्रेम व सहयोग की भावना कम होती गयी। इतना ही नहीं, राजसत्ता के इस चरित्र का प्रभाव परिवार एवं समुदाय पर भी पड़ता गया—विशेषतः उन भू-भागों में जो राजसत्ता के प्रभाव क्षेत्र में ज्यादा थे। फलस्वरूप कुछ क्षेत्रों में परिवार एवं समुदाय में भी हिंसा के तत्त्व का प्रवेश हो गया तथा स्त्री-पुरुष समानता की नींव कमजोर पड़ने लगी।

गांधीजी के आंदोलनों ने पहली बार हिंसा के वर्चस्व को तोड़ने की कोशिश की। प्रेम, करुणा, त्याग व सहयोग उनके आंदोलनों के मुख्य शक्ति-स्रोत बनते गये। आंदोलनों की आंतरिक प्रक्रिया में हिंसा की शक्ति के बजाय अहिंसा की शक्ति के प्रयोग के कारण ही, बहुत बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी सम्भव हुई। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हो, शराब के विरुद्ध पिकेटिंग हो या अन्य सत्याग्रह, महिलाओं की व्यापक भागीदारी रही। इसी प्रकार उनके वैकल्पिक रचना के प्रयोगों (जैसे चरखा आदि) में भी महिलाओं की व्यापक भागीदारी हुई थी।

हिंसा की सत्ता शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था होती है। जबकि अहिंसा की सत्ता समता-मूलक परस्पर आश्रयिता आधारित व्यवस्था होती है। समता-मूलक

यानी समान महत्त्व, एकरूपता नहीं। समान महत्त्व एवं परस्पर आश्रयिता प्रकृति का गुण है। अतः सामुदायिकता वहीं हो सकती है जहां समुदाय प्रकृति प्रदत्त जीवन-आधारों से सामूहिक रूप से जुड़े। इन व्यवस्थाओं में ही स्त्री की समानता तथा अहिंसक समाज का निर्माण हो सकेगा। राजसत्ता, पूंजीवादी बाजार तथा पूंजीवादी शहर केन्द्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से न तो समता-मूलक समाज बन सकेगा, न अहिंसा की सत्ता स्थापित हो सकेगी और न ही स्त्री की समानता आधारित भागीदारी बन सकेगी।

अगर हम इन ऐतिहासिक तथ्यों से सबक लें, तो अहिंसक क्रांति के सभी आयामों में स्त्री-समतामूलक भागीदारी बढ़ती जायेगी। सत्याग्रह के क्षेत्र एवं वैकल्पिक रचना के क्षेत्र दोनों में हमें सप्रयास इस दिशा में बढ़ना होगा। इन प्रयोगों को सघन रूप से उन क्षेत्रों में किया जा सकता है, जहां समुदाय अब भी प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों से सामुदायिक रूप से जुड़े हुए हैं। जल-जंगल-जमीन व खनिज आदि की पूंजीवादी लूट के विरुद्ध चल रहे आंदोलनों में भी इन तत्त्वों का प्रवेश जरूरी है।

स्त्री-पुरुष समानता के बिना अन्य प्रकार की समानताओं को लाना सम्भव नहीं होगा, और बिना व्यापक स्त्री भागीदारी के यह अहिंसक क्रांति भी सम्भव नहीं होगी।

दूसरी बात है कि शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा कार्य भी तभी बढ़ सकेगा, जब स्त्री द्वारा किये गये श्रम को पूरा सम्मान व महत्त्व मिले। आज बाजार की व्यवस्था केवल उस श्रम को महत्त्व देती है, जो बाजार में बिकने के लिए उपलब्ध है। जबकि परिवार व समाज में मनुष्य का अधिकांश श्रम (जो प्रेम, करुणा, सहयोग व सेवा प्रेरित होता है) बाजार के दायरे के बाहर होता है। बाजार के दायरे के बाहर लोकसत्ता निर्माण का कार्य भी इस बात से जुड़ा है कि स्त्री के श्रम के साथ स्त्री के बुद्धि-विवेक की समान सहभागिता लोक आधारित समाज व्यवस्था के संचालन में हो।

बिमल कुमार

## एक विधायक शक्ति

□ आचार्य राममूर्ति

अगुआई करने की शक्ति केवल महिला में दिखाई देती है। उसकी विधायक प्रतिभा नैसर्गिक है। उसने परिवार की रचना की है जबकि पुरुष ने अपनी शक्ति मुख्य रूप से सरकार की रचना में लगायी है। युग का संकेत है कि महिला-शक्ति जमाने की सबसे बड़ी विधायक शक्ति है।

महिलाओं में कुछ ऐसे गुण हैं, जो बहुत बिरले पुरुषों में ही होते हैं। कह सकते हैं कि शायद महिला में सबसे बड़ा गुण यह है कि पराये को अपना बना लेती है। जन्म लेती है और बढ़ती है पिता के परिवार में लेकिन बाद को पति के परिवार को अपना बना लेती है और उस परिवार में समाज के लिए एक नयी पीढ़ी तैयार कर देती है। कहा जा सकता है कि इससे बड़ा कौन-सा दूसरा रचनात्मक काम हो सकता है। परिवार नाम की संस्था का विकास महिला के ही आधार पर हुआ है। और, मनुष्य को सभ्य बनाने में सभी संस्थाओं की अपेक्षा परिवार का सबसे बढ़कर योगदान है। इसीलिए संस्कृत भाषा में महिला शब्द का अर्थ महान है।

1950 में भारत के संविधान ने स्त्री-पुरुष की समानता मानी और दोनों को वोट का अधिकार दिया। अनेक वर्षों के बाद संविधान ने पंचायत में महिलाओं के लिए आरक्षण की

व्यवस्था की और चुने हुए पदों में एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किये। जहां तक पंचायतराज का संबंध है महिलाओं को आरक्षण द्वारा विशेष अवसर दिये गये हैं।

यह सही है कि भारत के जातीय तथा सामंती समाज में सदियों से महिलाओं की जो स्थिति रही है, उसको देखते हुए यह आशा नहीं की जा सकती थी कि आजाद भारत का संविधान पुरुष और स्त्री को इतनी जल्दी और आसानी से समान मंच पर बैठा देगा। माना जा सकता है कि ऐसा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव के कारण ही हो सका है।

स्वतंत्र हो जाने के बाद देश के सामने दो प्रश्न थे—राष्ट्र का निर्माण और राज्य का निर्माण। राष्ट्र पर सबसे गहरी चोट विभाजन के कारण लगी थी। उसी घाव को भरना था और विभाजन के बाद भी करोड़ों मुसलमान भारत में रह गये थे। विभाजन का घाव शरीर पर लेकर भारत को एक राष्ट्र बनाना था जो धर्म, भाषा और विभिन्न जीवन-शैलियां लेकर अपनी विशाल जनसंख्या को इकट्ठा रख सके और देश के विभिन्न भागों को परिवार की तरह प्रेम के सूत्र में बांध सके। किसी अर्थ में यह काम सरल नहीं था। केवल हिन्दुओं में विभिन्न जातियों, दलितों, आदिवासियों के प्रश्न अलग थे। संविधान ने सबको नागरिक बना दिया था लेकिन वह समानता राष्ट्र और समाज के जीवन में कैसे उतारी जाय यह प्रश्न था। राज्य-निर्माण के लिए संविधान बनाने वालों ने देश की परम्परा, परिस्थिति और प्रतिभा को वह स्थान नहीं दिया जो उसे देना चाहिए था। उन्होंने 1935 के संघीय ढांचे को स्वीकार कर लिया और पश्चिम के उन्नत देशों से संविधान के नमूने लिये। दोनों को मिलाकर प्रातिनिधिक लोकतंत्र का एक ढांचा तैयार कर लिया गया। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय राजनीति पहले दलों की राजनीति बनी, फिर जातियों की राजनीति बन गयी और आज अपराधियों की बनती जा रही है। यहां तक दिखायी देने लगा है कि स्वयं राजनीति लोकतंत्र के लिए एक खतरा बन गयी है।

आजादी के जमाने में जो बातें सोची गयी थीं उसके अनुसार न राज्य बना न राष्ट्र बना। 1950 में जो संविधान बना उसमें प्रशासन की वही व्यवस्था रहने दी गयी जो अंग्रेजी जमाने से चली आ रही थी। वर्षों बाद जब पंचायतीराज लाया गया तो भी नौकरशाही के ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। आज पूरे देश में पंचायतीराज है लेकिन चुने हुए प्रतिनिधियों तथा नौकरशाही की समानान्तर व्यवस्था काम कर रही है। पंचायत, नौकरशाही और पार्टियों की यह खिचड़ी राज्य की व्यवस्था के लिए मजबूती नहीं कमजोरी का कारण बन रही है और जनता के शुद्ध लोकतंत्र में विश्वास को घटा रही है।

स्वतंत्र भारत में होना यह चाहिए था कि राज्य और समाज मिलकर राष्ट्र के पुनर्निर्माण का काम करते। भारत अपने ही लिए नहीं बल्कि पूरे दक्षिण एशिया के लिए नमूना बनता। लेकिन होते-होते कल्याणकारी राज्य का ऐसा स्वरूप बन गया कि पूरा समाज राज्य पर आश्रित हो गया। कल्याणकारी राज्य के इस स्वरूप की कल्पना आजादी के समय नहीं की गयी थी। गांधीजी ने और स्वयं कांग्रेस ने यह माना था कि आजाद हो जाने के बाद देश अपनी परम्परा को पहचानेगा और सदियों से जिस प्रतिभा का विकास हुआ है उसके रास्ते पर चलेगा। लेकिन हमारे नेताओं ने पश्चिम की राष्ट्र-राज्य (नेशन-स्टेट) के रास्ते पर ही चलना उचित समझा। देखते-देखते देश की दिशा बदल गयी। आज लोग पूछते हैं कि अंग्रेज तो गये लेकिन मिला क्या। वही पुलिस, वही शिक्षा, वही अफसरशाही, वही रगड़े-झगड़े—सब कुछ तो वही है; बदला क्या?

आज देश को एक नयी क्रांति की आवश्यकता है। वह क्रांति विधायक हो, समग्र हो, संपूर्ण हो, सतत हो और शांतिमय हो। हमने सत्ता के लिए अंग्रेजी राज से लड़ाई लड़ी। लेकिन स्वतंत्र देश आपस में सत्ता की लड़ाई नहीं लड़ सकता। उसे साथ रहने की कला विकसित करनी पड़ेगी। शांत और सुखी जीवन जीने का अभ्यास करना पड़ेगा। यह क्रांति

सर्वथा विधायक होगी। समाज में शांति न हो और पड़ोसीपन न हो तो समाज का निर्माण कैसे होगा? समाज का स्वरूप स्थिर हो जाय तो राज्य के स्वरूप की बात आसान हो जायेगी।

इस विधायक क्रांति की अगुआई कौन करेगा? क्या राजनैतिक दल करेंगे जिन्होंने मूल्यों का आधार छोड़कर जातियों, सम्प्रदायों और क्षेत्रों का आधार ले रखा है? क्या सरकार की नौकरशाही करेगी जो अपने को ही समाज मान बैठी है? क्या विभिन्न प्रकार के संगठन करेंगे जो अपने स्वार्थ को समाज का हित मानते हैं? नहीं, इनमें से कोई नहीं करेगा। अगुआई करने की शक्ति केवल महिला में दिखाई देती है। उसकी विधायक प्रतिभा नैसर्गिक है। उसने परिवार की रचना की है जबकि पुरुष ने अपनी शक्ति मुख्य रूप से सरकार की रचना में लगायी है। युग का संकेत है कि महिला-शक्ति जमाने की सबसे बड़ी विधायक शक्ति है।

पंचायतीराज एक अवसर है। पंचायत मात्र प्रशासन की इकाई नहीं बल्कि एक पड़ोस है। इसलिए पंचायत का विकास पड़ोस-निर्माण का काम है। संविधान ने पंचायतीराज को स्वशासन माना है— 'पंचायतीराज की संस्थाएं इस तरह चलायी जायं कि वे स्वशासन की इकाई बन जायं।' पंचायत के बिन्दु पर पड़ोस-निर्माण और साझेदारी का लोकतंत्र दोनों एक जगह मिल सकते हैं। पंचायत को एक पड़ोस का रूप देना है और यथा-संभव पड़ोस को एक बड़ा परिवार बनाने का काम है। यह काम महिलाओं के कुशल हाथों से हो सकता है और होना चाहिए। इसलिए पंचायतीराज महिला की विधायक शक्ति के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त अवसर है।

महिलाओं को शिक्षित और प्रशिक्षित करने की जिम्मेदारी सरकार और समाज दोनों को उठानी पड़ेगी। पुरुषों को महिलाओं के प्रति अपनी दृष्टि बदलनी पड़ेगी। महिलाओं को स्वयं अपने बारे में सोचना पड़ेगा कि वे नागरिक हैं, समान हैसियत की नागरिक हैं,

कविता

## तज ममता की मूरत प्यारी...

□ पदम कंवर सरगरा

तज ममता की मूरत प्यारी,  
क्यूं बनी तू मेरी दुश्मन मां।  
तू पालनहार तो मेरी थी,  
क्यूं बन गयी तू ऐसी निर्मम मां।  
मैं भी तो तेरे जीवन में,  
खुशियों के फूल खिलती मां।  
रहे अधूरे सपने तेरे,  
मैं उनमें रंग सजाती मां।  
खिल उठता तेरा आंगन भी,  
जब मैं आंगन में मुस्काती मां।  
घर की बगिया खिल उठती,  
गीत प्यार की गाती मां।  
बापू और तेरी चाहत की, मैं  
अनमोल पलों की नैमत थी।  
कुदरत की देन बनी बेटी का,  
क्यों नहीं तू समझी कीमत मां।  
इक शौर हुआ प्रलयकारी,  
मैं चीख पड़ी बचा ले मां।  
इक वहशी हाथ गला घोंटा,  
और थम गई हमारी सांसें मां।  
तू निर्मम होकर चुप क्यों रही,  
ममता पर दाग लगायी मां।  
दूजे तो सब बेगाने थे,  
पर थी तू अपनी मेरी मां।

जो तू हिम्मत दिखला देती,  
तो मैं दुनिया में आ जाती मां।  
तेरा नाम मैं करती रीशन,  
दुनिया में नाम कमाती मां।  
पहले तू बन गयी क्यो पत्थर,  
अब झूठा नीर बहावे क्यूं।  
दुनिया में मुझको ला न सकी,  
अब सपने में हमें बुलावे क्यूं।  
बेटे से बढ़कर बेटी है,  
इक प्रेम प्रीत की फुलवारी।  
वे घर मंदिर से पावन हैं,  
गूंजे जहां उनकी किलकारी।  
बेटे-बेटी में जो भेद करे,  
वह मानव रूप में दानव है।  
जो बेटे से बढ़कर बेटी माने,  
वह सब मानव में पावन है।  
अब के कौख जो आऊं मां,  
तू दिल से मुझको अपनाजा।  
लाख करे कौशिश कोई भी,  
बातों में उनकी मत आना।  
जिस दिन तू हिम्मत दिखलायेगी,  
हर बेटी अपना जीवन पायेगी।  
बेटी की हिम्मत रंग लायेगी,  
तो दुनिया तेरी यश गायेगी।

उन्हें अपना आंगन बढ़ाना पड़ेगा। अभी तक महिलाएं घर के छोटे आंगन में बंधी हुई थीं। अब उनका आंगन बड़ा हो गया। राष्ट्र के जीवन में उनके योगदान के महत्त्व को समझना पड़ेगा। पड़ोस-निर्माण राष्ट्र-निर्माण की पहली सीढ़ी है। यदि पड़ोस-निर्माण का काम महिलाओं को सौंपा जाय तो राष्ट्र-निर्माण की मजबूत नींव पड़ जायेगी। यह केवल औरतों का आंदोलन नहीं है, बल्कि नयी सभ्यता और नये जीवन के निर्माण का प्रयोग है।

पंचायत को महिला की वह शक्ति

मिलनी चाहिए, जो उससे परिवार को मिलती है—यानी प्रेम, विश्वास और सहकार की शक्ति। कुछ लोगों ने महिला शांति सेना की नींव डाली है। परिवार, पड़ोस से लेकर पंचायत तक के पूरे स्थानीय क्षेत्र को हिंसामुक्त बनाना है। आज स्थिति यह है कि पूरा क्षेत्र अनेक प्रकार की हिंसाओं से छिन्न-भिन्न हो गया है और दिनोंदिन अधिक होता जा रहा है। हिंसामुक्त परिवार और संघर्षमुक्त पड़ोस तथा सहकारयुक्त पंचायत—यह महिलाओं की विधायक शांति के सामने चुनौती है। ('महिला शांति सेना' से) □



## समाज की धुरी

□ शुभू पटवा

लिंग भेदभाव, दलित महिलाओं-किशोरियों में व्याप्त असुरक्षा भाव और ग्रामीण महिलाओं के साथ होने वाले बरताव की बेरहम कहानियां आए दिन सुनने को मिलती हैं। कभी डायन बता कर होने वाले अन्याय की शिकार किसी को बनना पड़ता है, तो कभी अछूत बता कर यह वर्ग अनहोनी का शिकार हो जाता है। इन सब परिस्थितियों की ओर भी उतना ही ध्यान देने की आवश्यकता है, जितना कि राजनीतिक अधिकारों के लिए।

स्त्री-जाति समाज की प्रमुख धुरी है—यह सब स्वीकार करते हैं, पर जब उसके अधिकारों की बात होती है तो समाज का 'प्रभु वर्ग' गलतियां निकालने के प्रयत्न करता है और वे अधिकार देने में भी हिचकिचाहट होती है, जिसके ढिंढोरे पीटे जाते रहे हैं। इस बात की पुष्टि के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं, हमारे अपने 'कर्णधारों' की ओर ही हम देख लें। महिलाओं के लिए संसद में तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की बात यह प्रमाण है कि सारे गाल बजाने के बाद भी यह कानून नहीं

बन सका। अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए जागरूक महिला-समाज का संघर्ष अभी भी जारी है और समाज के पुरुष वर्ग का एक हिस्सा भी स्त्री वर्ग के इस संघर्ष में साथ है।

महिला अधिकारों के लिए संघर्ष का यह एक पक्ष है, पर यह हासिल हो जाने भर से स्त्री-जाति के साथ आज जो-कुछ हो रहा है—वह सब समाप्त हो जाएगा, ऐसा मान लेना भी भारी खुशफहमी होगी। हम जानते हैं कि ऐसा कोई मान भी नहीं रहा, न वे जागरूक महिलाएं और न वह पुरुष वर्ग जो स्त्री-जाति के लिए उनके संघर्ष में साथ-साथ हैं। जब राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ कुछ अन्य पक्षों—जो कि काफी महत्वपूर्ण हैं—की ओर भी ध्यान देने की जरूरत है, बल्कि काफी गंभीरता से यह सोचना आवश्यक है कि महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव और इसी से पैदा होने वाली हिंसा से स्त्री-समाज को कैसे मुक्त कराया जाए। महिला आयोग से लेकर अन्य जन संगठन महिला अधिकारों की रक्षा और उनकी बेहतरी के लिए प्रतिबद्ध हैं। यह होते हुए भी लिंग भेदभाव, दलित महिलाओं-किशोरियों में व्याप्त असुरक्षा भाव और ग्रामीण महिलाओं के साथ होने वाले बरताव की बेरहम कहानियां आए दिन सुनने को मिलती हैं। कभी डायन बता कर होने वाले अन्याय की शिकार किसी को बनना पड़ता है, तो कभी अछूत बता कर यह वर्ग अनहोनी का शिकार हो जाता है। इन सब परिस्थितियों की ओर भी उतना ही ध्यान देने की आवश्यकता है, जितना कि राजनीतिक अधिकारों के लिए।

निश्चय ही राजनीतिक अधिकार पाने से आने वाला आत्म-विश्वास ऐसी सब बेइंसाफियों के विरुद्ध संघर्ष में सर्वाधिक असरदार होता है। तिहत्तरवें संविधान संशोधन से पंचायतीराज प्रणाली में महिलाओं को मिले अधिकारों और आरक्षण की व्यवस्था से यह बात स्पष्ट है। वे ग्रामीण महिलाएं, जो घूंघट की ओट में चूल्हा-चाकी और ढोर-

पशुओं की देखभाल तक सीमित थीं, स्थानीय स्वशासन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लक्षण अब साफ दिखाई दे रहे हैं। पंचायतों में आरक्षण से ग्रामीण क्षेत्रों की कोई बारह लाख से अधिक महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्र में दखल दे रही हैं। हमारे समाज की ये औरतें वे हैं, जिनकी न आवाज थी और न अस्तित्व। स्पष्ट है कि राजनीतिक अधिकार बेइंसाफियों के विरुद्ध एक माकूल अस्त्र सिद्ध हो सकता है।

संविधान का तिहत्तरवां संशोधन सन् 1992 में आया था, पर महिला अधिकारों और दायित्वों के सवाल पर तो हमारे देश में हमेशा ही सोचा जाता रहा है। प्राचीन भारत की विदुषी नारियों के नाम हम सदा ही गिनाते रहे हैं और—'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता'—जैसे सूक्त भी बोलते रहे हैं और इन बातों को चरितार्थ करने वाले भी हमारे सामने हैं। ऐसे जन संगठनों के नाम गिनाए जा सकते हैं, जो महिला सशक्तीकरण के लिए अनुकरणीय काम कर रहे हैं। 'सेवा—स्वाश्रयी महिला सेवा संघ'—जो अप्रैल, 1972 में स्थापित हुआ, ऐसा ही एक जनसंगठन है। यह संगठन सीधे तौर पर राजनीतिक अधिकारों की बात भले नहीं करता हो, पर प्रकारांतर से महिला अधिकारों की सभी बातों से किसी संगठन का विलगाव भी नहीं रह सकता।

इसी तरह कुछ दूसरे संगठन भी हैं, जिनकी बुनियाद अध्यात्म और नैतिकता है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी की प्रेरणा से यह संगठन अस्तित्व में आया है। एक नैतिक समाज के निर्माण में ऐसे संगठनों की भूमिका अपेक्षतया अधिक महत्वपूर्ण है। भगवान महावीर ने भी—जो ईसापूर्व सन् 599 में जन्में—अपने धर्म संगठन में चंदनबाला को साध्वीप्रमुखा का पद दिया था। तब उनके संगठन में 36 हजार साध्वियां थीं; इसके उलट साधु मात्र 14 हजार ही थे। इस तफसील से यह स्पष्ट हो

जाता है कि महिलाओं के अधिकार, उनके स्वाभिमान और उत्तरदायित्वों के प्रति हर युग में भारतीय समाज सोचता रहा है और इस दिशा में कदम भी उठे हैं। निश्चय ही यह पृष्ठभूमि वर्तमान स्त्री-संघर्ष में न केवल सहायक हो सकती है, पर साथ ही एक ऐसा इतिहास भी सामने आता है, जो उत्प्रेरक होने के साथ-साथ दिशाबोध भी दे सकता है।

मुझे लगता है कि महिला अधिकारों पर हमें व्यापक बहस करनी चाहिए। हमारे सामने भगवान महावीर, आचार्यश्री तुलसी और महात्मा गांधी से लेकर इलाबेन भट्ट की तरह एक विराट पृष्ठभूमि है। इसी के साथ संविधान के तिहत्तरहवें संशोधन से पंचायत राज प्रणाली में तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण से ग्रामीण महिलाओं की भूमिका भी हमारे सामने है। महात्मा गांधी और आचार्यश्री तुलसी ने जिस तरह के ढांचे की आकांक्षा की थी और इन सबके चलते भी वह बात पार नहीं पड़ रही है, तब कहा जा सकता है कि अधिकारों व दायित्वों के निरस द्वंद में मूल बात बिसर रही है।

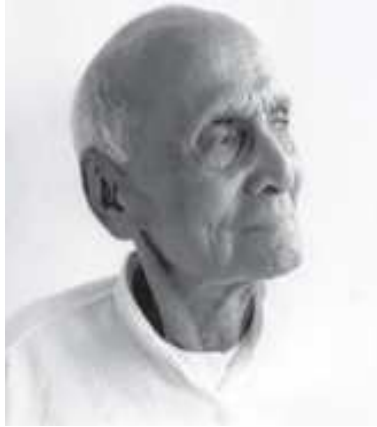
यह मूल बात क्या है? इस पर हमारी नजर होनी चाहिए। इस मूल बात पर बहुत कहा-सुना गया है। यह न होता तो इला र. भट्ट पूरी दुनिया में स्वाश्रयी महिलाओं की बेहतरी के लिए जानी ही नहीं जातीं। कहने का तात्पर्य यह कि हमारा आधार हमारे पास मौजूद है। परीक्षण और कसौटियों पर भी यह आधार कसा जा चुका है। फिर भी विषमता और विसंगतियां, हिंसा और अत्याचार का फन अभी भी ऊपर उठता है और फुफकार भी देता है। इसका शमन हो और इस दिशा में आगे बढ़ें—एक समरसता और सहजीवी सामाजिक ढांचा व्यापक रूप ग्रहण करें—ऐसे कदम उठने जरूरी हैं।

अधिकार और दायित्व के साझा संघर्ष के कदमों में ही इसकी फलश्रुति निहित है—हमें यह मान लेना चाहिए और इसी दिशा में अग्रसर होना चाहिए। □

## स्त्री-शक्ति

# भय छोड़ दें

### □ दादा धर्माधिकारी



हम संक्रमण काल में से गुजर रहे हैं। पुराने मूल्य, पुरानी प्रतिष्ठाएं जीर्ण होकर ढह रही हैं। नये मूल्य और नयी प्रतिष्ठाओं की स्थापना करनी है। जड़यंत्रवादी और प्रतिवर्तनवादियों (Behaviourists) ने मनुष्य को यंत्राधीन और बाह्यतंत्राधीन मान लिया। उस यांत्रिक और तांत्रिक मनु में से हम एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। इस मूल्य-परिवर्तन की सिद्धि हममें से हरएक के प्रयत्न पर निर्भर है।

आज तक स्त्री और पुरुष अपने-अपने स्वराज्य में रहते थे। अपने स्त्रीत्व या पुरुषत्व का बोध भूलकर एक-दूसरे के सान्निध्य में रहने का अभ्यास उन्हें नहीं है। पुरुष के सान्निध्य में स्त्री या तो आत्मरक्षण के पैतरे पर होती है या फिर पुरुष का अनुरंजन करने में मग्न हो जाती है। बराबरी की भूमिका से व्यवहार करने की उसे आदत नहीं है। फलस्वरूप पुरुष को भी नहीं है।

आज कुटुम्ब का पालनकर्ता, भर्ता और अभिभावक पुरुष है। किन्तु कुटुम्ब का यह कर्ता पुरुष शरीर से हमेशा अधिक बलवान और मजबूत थोड़े ही होता है! फिर भी हम उसका नेतृत्व स्वीकार करते हैं। शरीर-बल

जीवन की पात्रता का अंतिम प्रमाण नहीं है। इस तत्त्व की प्राण-प्रतिष्ठा करना ही ध्येयनिष्ठ और पराक्रमी तरुणियों का दायित्व है।

सदियों से स्त्री का जीवन पुरुष-निर्भर और पुरुष-सापेक्ष रहा है। इसलिए उसमें बलिदान, आत्मोत्सर्ग और कलेशसहन की अतुलित शक्ति होते हुए भी कुटुम्ब तथा समाज में उसकी भूमिका गौण रही। ईश्वर-भक्ति और आत्मज्ञान में निमग्न पुरुषों ने उसे मोक्षमार्ग की मुख्य बाधा माना। सभ्य पुरुषों ने स्त्री की चर्चा करना वैषयिकता का लक्षण माना। विरक्तों ने उसका मुखावलोकन करना निषिद्ध समझा। विलासियों ने और कवियों ने उसे विलास और उपभोग का साधन माना। गृहस्थों ने माता, भगिनी तथा कन्या के रूप में उसे देवता या पवित्र धरोहर माना। परन्तु इनमें से किसी ने उसे तुल्य सत्त्व और तुल्य पराक्रम मानव नहीं माना। परन्तु आज तो सामाजिक जीवन में स्त्री को लिंग-निरपेक्ष नागरिकता का अधिकार प्राप्त है। इसलिए उसे अपने स्त्रीत्व का रक्षण और विकास करते हुए पुरुष-निर्भर और पुरुष-सापेक्ष जीवन से ऊपर उठना है। समाज में स्त्री-पुरुष का सहजीवन होगा। दोनों का जीवन परस्पर-पोषक और परस्पर-पूरक होगा, परन्तु स्त्री का जीवन पुरुषापेक्षी तथा पुरुषावलम्बी नहीं होगा। यह तभी हो सकता है, जब स्त्री अपनी परम्परागत भ्रांत धारणाओं को छोड़कर 'स्वरक्षित' हो जायेगी। इसके लिए उज्ज्वल चारित्र्य की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता पवित्र जीविका की भी है। निष्कलंक चारित्र्य और शुद्ध जीविका ही स्त्री के औपचारिक नागरिकत्व को वास्तविक बना सकती है।

शोषित वर्ग में भी स्त्री निकृष्ट-शोषित रही है। निकृष्ट-से-निकृष्ट पुरुष की अधिसत्ता उस पर आज तक रही है। इसके लिए संविधान और विधान में जो परिवर्तन आवश्यक थे, उनमें से मुख्य-मुख्य परिवर्तन अन्य सभ्य राष्ट्रों की तरह आधुनिक भारत में भी किये जा चुके हैं, अन्य आवश्यक परिवर्तन होते जा रहे हैं। परन्तु संविधान और विधान से लाभ

उठाने की शक्ति तो स्त्रियों में चारित्र्यबल से ही आ सकती है। विज्ञान युग आत्मबल का रास्ता प्रशस्त करता है। अतः वर्तमान युग स्त्री के स्वायत्त जीवन का पुण्य पर्व है।

पुराने जमाने में 'स्नातक' शब्द केवल लड़कों के लिए ही था, क्योंकि ब्रह्मचर्य केवल लड़कों के लिए ही था। बारह वर्ष तक गुरु-गृह में रहकर, अनेक विद्याओं और कलाओं का अध्ययन कर विद्या-विनय-सम्पन्न ब्रह्मचारी अवभृथ स्नान करता और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। अवभृथ स्नान करने वाला ही 'स्नातक' यानी दुनियादारी में पढ़ने की योग्यता प्राप्त व्यक्ति कहा जाता था! लेकिन उन दिनों लड़कियों का न तो उपनयन होता था और न आज की तरह कोई उन्हें शिक्षा ही देता था। यही कारण है कि उनके लिए ब्रह्मचारिणी या नतिका शब्द का प्रयोग नहीं होता था। लड़की सयानी होते ही स्नातिका समझ ली जाती थी। वह गृहस्थी में प्रवेश करने और मातृपद पाने योग्य मान ली जाती थी। पतिगृह-प्रवेश ही उसका गुरुगृह-प्रवेश और ऋतु-स्नान ही उसका स्नातकत्व माना जाता था।

प्राचीन काल में स्त्रियों के लिए उपनयन या व्रतबंध विहित न होने के कारण ही उन्हें वेदाध्ययन आदि का अधिकार भी नहीं था। उनके बारे में मनु ने मंत्रयुक्त विधि आदि का निषेध किया है। आज भी हम लोग देखते हैं पंडितजी (पुरोहित) स्त्रियों से अभिषेक करवाना हो, तो रुद्र का पाठ न कर महिम्नस्तोत्र का ही पाठ करते हैं, यानी आज भी हमारी धर्म-विधि में स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं है। यही कारण है कि आज भी उनका वेदाध्ययन का संस्कार नहीं किया जाता। उनके लिए न तो गुरुगृह-निवास है और न अवभृथ स्नान ही। यह अलग बात कि इस युग में यही लड़कों पर भी लागू है।

आजकल हम लोग विभिन्न विद्यालयों एवं विद्यापीठों द्वारा स्त्री-शिक्षा का जो उपक्रम कर रहे हैं, वह एक युगप्रवर्तक कार्य है। प्राचीन वाङ्मय में इसका ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। शिक्षण कार्य के लिए स्त्री माता

के नाते पुरुष की अपेक्षा हजार गुना श्रेष्ठ मानी गयी है। मनु ने एक जगह कहा है कि "दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ है और माता हजार पिताओं की अपेक्षा (गुरु के नाते) श्रेष्ठ है।" किन्तु प्रत्यक्ष जीवन में इस बात का प्रमाण या कोई चिह्न न मनु के युग में और न बाद के युग में ही दिखायी पड़ता है। स्मृतियों में भी इनका चिह्न या सूचक संकेत नहीं दीखता। स्मृतियों में एकाध वचन हो, तो उसका संकेत श्रुतियों में कहीं-न-कहीं दिखायी पड़ ही सकता है। मनु के युग में एक भी स्त्री 'आचार्य' दिखायी नहीं पड़ती। अवश्य उससे पहले श्रुतियों में गार्गी, मैत्रेयी जैसे उदाहरण दिखायी पड़ते हैं, फिर भी स्त्री के आचार्य होने का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। जब स्त्रियों के लिए गुरुकुल ही नहीं थे, तो स्त्री आचार्या कैसे होगी?

आज हम लोग इस विषय में स्त्रियों की भूमिका में क्रांति करना चाहते हैं। आधुनिक शिक्षा-शास्त्र का यह एक महनीय प्रमेय है कि गुरु के नाते स्त्री पुरुषों से हजार गुना श्रेष्ठ है। इसका प्रत्यक्ष प्रयोग हमें प्रगतिशील राष्ट्रों में दिखायी पड़ता है। क्रांतिकारी राष्ट्रों में अग्रगण्य माने जाने वाले रूस में शिक्षक की अपेक्षा शिक्षिका की योग्यता अधिक मानी जाती है। शिक्षक के क्षेत्र में इस प्रमेय का प्रयोग सूक्ष्मता से हुए बिना हम समाज में मूल्य परिवर्तन नहीं कर सकते। अतएव आगे से जिस अर्थ में लड़कों के लिए 'स्नातक' शब्द रूढ़ हो गया है, उसी अर्थ में वह लड़कियों के लिए भी शिक्षण और जीवन में प्रयुक्त होना चाहिए।

उत्क्रांति या विकास का एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि एक का उद्धार दूसरा नहीं कर सकता। हरिजनों का उद्धार सवर्ण नहीं कर सकता। इसीलिए बापू जब हरिजन सेवा का आंदोलन चलाते थे, तब कहते थे कि "अस्पृश्यता-निवारण हरिजनों के उद्धार के लिए नहीं, बल्कि सवर्णों के उद्धार के लिए है। अस्पृश्य भावना से सवर्णों का अधःपतन हो गया है। अतः आत्मशुद्धि के लिए उन्हें हरिजन सेवा करनी चाहिए। हरिजनों का उद्धार तो

हरिजन ही कर सकते हैं। अपना उद्धार हम ही कर सकते हैं, यह अबाधित सिद्धांत है।"

यही न्याय स्त्रियों पर भी लागू है। पुरुष ने नारी को दबा दिया है। उसका विकास होने नहीं दिया। इस पाप का प्रायश्चित्त उसे करना ही चाहिए। लेकिन वह होगा खुद के कल्याण के लिए ही, अपने ही उद्धार के लिए; स्त्री पर मेहरबानी, कृपा या करुणा के रूप में नहीं। स्त्री का उद्धार पुरुष कर नहीं सकता। वह तो उसे स्वयं ही करना होगा। दूसरे के मरने से हमें स्वर्ग नहीं दीखेगा।

जब तक 'स्त्री' और 'श्री' के बीच अभेद बना रहेगा, तब तक स्त्री की भूमिका श्री से अलग रह नहीं सकती। महाभारत में भीष्म ने स्त्री को श्री कहा है। मनु ने भी उन्हें 'घर की दौलत' और 'घर की शोभा' कहा है। 'श्री' और 'स्त्री' शब्द के उच्चारण में तो साम्य है ही। महाभारत में द्रौपदी को दुर्योधन के दरबार में आने का बुलावा जाता है। इस प्रसंग का वर्णन मोरोपंत ने किया है। उस दूत से द्रौपदी कहती है, "स्त्री म्हण श्री नव्हे"— अर्थात् "अरे, उन्होंने 'श्री' मंगवायी होगी, स्त्री नहीं।" लेकिन समाज में स्त्री को 'लक्ष्मी' कहने की प्रथा है। 'स्त्रियों का डब्बा' यानी 'लक्ष्मी का डब्बा'। भले ही साहित्य और पुराण में लक्ष्मी विष्णुपत्नी हो, लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में तो वह जड़ सम्पत्ति ही मानी जाती है। 'लक्ष्मी' शब्द धन और सम्पत्ति का ही द्योतक है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्माचार्य ने राजा को उन चीजों की सूची दी है, जिनके चुराये जाने का भय रहता है। उस सूची में 'स्त्री' भी है। मुझे लगता है कि स्त्रियों के सभी प्रश्नों में यह एक 'यक्ष प्रश्न' है। अगर यह हल नहीं होता, भले ही अन्य सब प्रश्न हल हो जायं, तो उसकी सामाजिक भूमिका बिलकुल नहीं बदल सकती।

इस वस्तुस्थिति का परिणाम हमारी भावनाओं, विचारों और संस्कारों पर हो गया है। स्त्री विश्वास की पात्र नहीं। आप लोग मेरे इस कथन का गलत अर्थ न करें। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री मिथ्या या कपटी होती है। वह

सर्वथा प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ हो सकती है—बिलकुल सत्यवादी और सदाचारी हो सकती है, फिर भी वह विश्वासपात्र नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय कदाचित् अंग्रेजी के 'अन्रिलायेबल' शब्द से अधिक स्पष्ट हो सकता। सर्वथा 'आनेस्ट' (ईमानदार) व्यक्ति भी 'अन्रिलायेबल' हो सकता है। उदाहरणार्थ, छोटा बच्चा या बूढ़ा व्यक्ति सर्वथा आत्मनिर्भर नहीं रह सकते। स्त्री के रक्षणीय होने के कारण उसे अपने खुद के भरोसे छोड़ा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से वह अविश्वसनीय न होने पर भी विश्वासपात्र भी नहीं है। उसके बारे में हम निश्चिन्त नहीं रह सकते, क्योंकि वह स्वयं निर्भय नहीं है।

आप कहेंगे, 'यह शारीरिक दुर्बलता के कारण स्वाभाविक है।' मैं अधिक विवाद में पड़ना नहीं चाहता, लेकिन स्त्री का यह स्वभाव नहीं, परम्परागत संस्कार ही है— इतना अवश्य कहूंगा। इस बारे में प्रकृति को दोष देना गलत है। दुर्बलता शरीर का धर्म हो, तो भी वह मन का धर्म नहीं बनना चाहिए, यह मैं अवश्य कहना चाहता हूँ। मन कमजोर न हो, तो बस है। इस विषय में स्त्रियां पुरुषों से पेश पा सकती हैं। जिसका मन दुर्बल होता है, उसकी उन्नति सम्भव नहीं। दुर्बल मन में कोमल भावनाएं भी नहीं रह सकतीं। कमजोर मन में करुणा नहीं समाती। 'क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति' यह सोलह आना सच है।

स्त्रियों का मन कोमल होता है, यानी कमजोर होता है, ऐसा माना जाता है। लेकिन 'कोमल' का अर्थ 'दुर्बल' नहीं है। 'नाजुक' का मतलब 'कमजोर' नहीं। किन्तु स्त्रियां 'भीरु' कही गयी हैं, इसीलिए उनमें चंचलता की भी कल्पना की गयी है। सर्वत्र यही माना जाता है कि कामिनी भी लक्ष्मी जैसी ही चंचल होती है। दशरथ जैसा चक्रवर्ती राजा भी जब कैकेयी के हठवादे से हैरान हो गया, तो उसने स्त्रियों को 'अनित्यहृदय' कहा, यानी कहा कि स्त्रियां अस्थिरवृत्ति की होती हैं। चंचलते तेरा नाम स्त्री है—इस वाक्य में शेक्सपियर ने मानो वाल्मीकि के इस वाक्य का अनुवाद ही

कर दिया। प्राचीन सुभाषितकार तो इससे भी आगे बढ़ गये! उन्होंने उद्गार व्यक्त किये कि 'पुरुषों के भाग्य की तरह स्त्रियों का चरित्र देवता भी नहीं जान सकते; फिर पामर मानव की क्या बात!'

स्त्रियों के विषय में ऐसी धारणा बनने का एकमात्र कारण है उनका डरपोकपन! भीति और प्रीति! वास्तविक नीति और वास्तविक प्रीति को स्त्री के जीवन में स्थान ही नहीं रह गया है। उपन्यास और कहानियों का प्रेम अलग है और स्वायत्त एवं सम्पन्न हुए जीवन को जिस प्रेम की जरूरत होती है, वह अलग है।

लज्जा और भीरुता स्त्रियों के भूषण माने गये हैं, इसीलिए वे खुले तौर पर दुनिया में जी भी नहीं पातीं। वे जन्मभर लजाती हुई जीती हैं, डरती-डरती ही जीती हैं। उन्हें जीने में भी लाज लगती है। हम जी रही हैं, मानो दुनिया के समक्ष इसके लिए क्षमा-याचना करती हुई बेचारी जीवन बिताती हैं।

मैं स्त्री-जीवन के इस मूलभूत प्रश्न की ओर आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। समाज में स्त्री के सुरक्षित होने मात्र से उसकी समस्या हल हो नहीं सकती। उसे पुरुषों द्वारा स्त्रियों की रक्षा की जा सकती है। सभी दुष्ट पुरुषों का सफाया कर देने पर स्त्रियां उनसे सुरक्षित हो जायेंगी। उन्हें पुरुषों से भय नहीं रहेगा। लेकिन इतने से वे स्वतंत्र कभी नहीं हो सकतीं। जब तक स्त्री 'स्वरक्षित' न होगी, तब तक सच्चे अर्थ में 'सुरक्षित' नहीं हो सकतीं। जब तक उनमें दुष्टों और गुण्डों का प्रतिकार करने की क्षमता नहीं आती, तब तक स्त्री-जीवन सुरक्षित और स्वतंत्र हो नहीं सकता। जो स्वरक्षित नहीं, वह सुरक्षित भी नहीं। गत महायुद्ध में बहुत-सी स्त्रियों ने युद्ध में अद्भुत शौर्य दिखाया, विलक्षण धैर्य और साहस के काम किये, लेकिन इतना करने पर भी उन राष्ट्रों की स्त्रियों की सुरक्षा का प्रश्न शेष ही रहा। शत्रु से रक्षणीय चीजों में अब भी स्त्रियों की गणना की जाती है। इतनी महान् झांसी वाली रानी 'लक्ष्मीबाई' ने भी, जिसने कि युद्धकर्म की पराकाष्ठा कर दिखायी, अंत में अपने शरीर की रक्षा के लिए अग्नि का ही

सहारा लिया। स्त्री की प्रतिष्ठा, उसकी इज्जत, उसका शील, इस तरह शरीरनिष्ठ बन गया है।

एक दूसरे भी अर्थ में गत महायुद्ध में स्त्रियों की शरीर-निष्ठ उपयुक्तता का प्रमाण मिला है। शत्रु पक्ष की गुप्त खबर लाने के लिए गुप्तचरों के काम में स्त्रियां नियुक्त की गयी थीं। मोहक स्त्रियां शत्रु के पास भेजी जाती थीं। इस प्रकार पुरुषों के चित्त में रही हुई स्त्री-शरीर-विषयक कामना का लाभ उठाया गया। कुछ लोग कहते हैं, "इन स्त्रियों ने अपने देश के हित के लिए अपना शील तक दे डाला।" लेकिन मुझे लगता है कि स्त्रियों ने पुरुषों की स्त्री-विषयक कामना से लाभ उठाकर अपने शरीर का दुरुपयोग कर लिया। आखिर अप्सराएं तपस्वियों के साथ क्या करती थीं? इसे ही 'रूप का सौदा' कहा जाता है। इस तरह अपन शरीर का उपयोग करना कभी भी स्त्री को भूषणास्पद नहीं मानना चाहिए। इसमें स्त्री-शरीर की विडम्बना और मानवता का अपमान है।

स्त्री को 'प्रेमजीवी' कहा गया है। उसका हृदय प्रेम का अखंड स्रोत है। लेकिन मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक बताना चाहता हूँ कि दुर्बल अंतःकरण में प्रेम रह ही नहीं सकता। आजकल हम लोग जिसे स्त्री का प्रेम कहते हैं, वह प्रेम न होकर निष्ठा है। किसी दास के चित्त में अपने मालिक के प्रति अटल निष्ठा हो सकती है। पुराने जमाने में ईमानदार नौकरों की स्वामिभक्ति प्रसिद्ध ही हुआ करती थी। लेकिन वह निष्ठा, भक्ति यानी प्रेम नहीं है। 'पतिनिष्ठा' का अर्थ पतिप्रेम नहीं। पतिव्रत्य अलग चीज है और प्रेम अलग। दास में निष्ठा होने पर भी प्रेम रहना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं। प्रेम के लिए बराबरी का नाता चाहिए। उसमें भय का एक कण भी नहीं रहना चाहिए। लोग कहते हैं, "बिनु भय होत न प्रीत।" लेकिन वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। भय और प्रेम एक साथ रह ही नहीं सकते। जब तक स्त्री को पुरुष से भय बना रहेगा तब तक वह उससे खुले दिल से प्रेम नहीं कर सकती।

इसलिए लड़कियों को मेरी पहली सलाह है कि वे भय छोड़ दें। ईश्वर का भी भय छोड़



दें। जिससे भय लगता है, उसे कोई नहीं चाहता। बच्चा कभी मास्टर को नहीं चाहता। बालक कभी नहीं चाहते कि कठोर-प्रकृति पिता घर पर रहे। जिस स्त्री को अपने पति से डर लगता है, वह यही चाहती है कि पति सदा काम पर ही रहे। हमें पुलिस का साथ नहीं सुहा सकता। दूसरों से डर रहने पर ही पुलिस की जरूरत महसूस होती है। इसी तरह स्त्री भी किसी पुरुष का आश्रय इसीलिए करती है कि दूसरे पुरुषों से रक्षा हो सके। एक को वह अपना सर्वस्व-समर्पण कर देती है। इस सर्वस्वदान को 'निष्ठा' भले ही कहा जाय, लेकिन यह समान भूमिका पर बराबरी के नाते का प्रेम नहीं है। जब तक हम शेर से डरते हैं, तब तक उससे हिलमिल नहीं सकते। जब शेर मेमने जैसा सीधा होगा, तभी हम उसे सहला सकते हैं। उससे दोस्ती कर सकते हैं। जिस दिन स्त्री, पुरुषों का भय त्याग देगी, उसी दिन वह उस पर वास्तविक प्रेम कर सकेगी। बलवान मन और बलवान हृदय ही प्रेम का पात्र हो सकता है।

*स्त्री स्वरक्षित होनी चाहिए। उसे लज्जा और भय छोड़ देना चाहिए और उसे ऐसा मोड़ शिक्षा से मिलना चाहिए। यह आधुनिक स्त्री-शिक्षा का आधारभूत सिद्धांत है। यह मानसिक क्रांति सम्यक् शिक्षण से ही सध सकती है।*

शिक्षण-पद्धति संबंधी अन्य मुद्दे स्त्री और पुरुष, दोनों के शिक्षण के लिए सामान्य हैं। मैं उनका बहुत ही सरसरी तौर पर उल्लेख कर सकूंगा। आज का शिक्षणशास्त्र कहता है कि शिक्षा में सामंजस्य और अनुबंध चाहिए। शिक्षा के विभिन्न विषयों पर परस्पर संबंध ही सामंजस्य है और कुल शिक्षा का जीवन से सम्बद्ध होना ही 'अनुबंध' है।

सामंजस्य और अनुबंध के सिवा शिक्षा का एक तीसरा भी सिद्धांत है। उसे हम 'विनय' कहें। अंग्रेजी में जिसे 'कल्चर' कहते हैं, उसे हम 'विनय' कहेंगे। विनय यानी 'सदभिरुचि'। यह व्यक्ति की रुचि, अरुचि और व्यवहार से व्यक्त होती है। हमारे प्राचीन साहित्य में विद्या और विनय का अभेद्य संबंध माना गया है। मानव की अभिरुचि उसके

उठने-बैठने, बोलने-चालने, देखने-सुनने यानी जीवन के सभी व्यवहारों से व्यक्त हुआ करती है। अंग्रेजी में जिसे हम कल्चरल वैल्यू या सांस्कृतिक मूल्य कहते हैं, उसमें मुख्यतः दो गुणों का समावेश होता है—एक सुसंस्कृत अभिरुचि और दूसरा बैलेंस अर्थात् संतुलन या तारतम्य। विनयहीन विद्या संतुलित नहीं रहती। मानव के मनोरंजन में भी, यही है। उसके मनोरंजन में भी, मुख्यतः उसकी अभिरुचि स्पष्ट होती है। अन्य जीवों को कष्ट देने वाला मनोरंजन सदभिरुचि से रहित हुआ करता है। अगर बच्चा मेढक की जान ले रहा हो, तो उसका वह खेल आसुरी ही माना जाता है। जिस खेल में दूसरों के सुख का ध्यान होगा, वह सुसंस्कृत और सदभिरुचिपूर्ण कहा जायेगा। इस विनयशीला को ही समाजशास्त्र की भाषा में 'सामाजिकता' कहा जाता है। शिक्षा के कारण यह सामाजिकता बढ़नी चाहिए। जीवन के प्रत्येक व्यवहार में हमें दूसरों के साथ काम करने की कला सधनी चाहिए। स्त्री-पुरुषों को एक-दूसरे के साथ बर्ताव करने में भी यह कला सधनी चाहिए। सार्वकालिक सदभिरुचि की भी यही कसौटी है।

स्त्री पुरुषों के साथ खुले तौर पर रह सके, इसके लिए उसे आज तक अपने हाड़-मांस में भिंदी हुई बहुत-सी गलत धारणाओं को त्याग देना होगा। ऐसी धारणाओं में एक यह भी है कि 'स्त्री का शरीर कांच के बर्तन जैसा है। इसलिए उसकी इज्जत कुरकुरी है।' अगर आप लोग इस धारणा से चिपकी रहेंगी, तो आपके साथ कांच के बर्तन की तरह ही बर्ताव करना होगा। आपके जीवन पर यह लेबल लगाना पड़ेगा—'ग्लास, विद केयर'—यानी संभालो यह कांच है। कांच के बर्तन अन्य बर्तनों के साथ कभी नहीं रखे जा सकते, बल्कि वे एक-दूसरे के साथ भी नहीं रखे जा सकते। एक-दूसरे के साथ रखना हो, तो उसके बीच में रुई या कागज का भूसा भरना पड़ता है। जब तक स्त्रियों के मन में यह गलत और खुराफाती धारणा बनी रहेगी, तब तक स्त्रियों के बीच भी परस्पर मैत्री हो नहीं सकती। उनमें भी परस्पर अविश्वास ही बना

रहेगा। बीच-बीच में भूसा भरना पड़ेगा। यही कारण है कि 'पुरुषों का मत्सर' प्रसिद्ध नहीं है, 'स्त्रियों का ही मत्सर' प्रसिद्ध है। 'स्त्रियों की मैत्री' प्रसिद्ध नहीं। पुरुष ने अपने मित्र के लिए पत्नी के गहने भी बेच दिये, ऐसी कथाएं मिलती हैं, लेकिन यह कभी सुनाई नहीं पड़ता कि किसी स्त्री ने अपनी सहेली के लिए पति का सोने का ठोस कड़ा या घड़ी बेच दी हो। स्त्री का प्रेम अपने परिवार के सीमित क्षेत्र में ही अपना चमत्कार दिखलाता है। अब समाज के व्यापक क्षेत्र में उनका तेज और माधुर्य अनुभव में आना चाहिए। उस प्रेम की उत्कटता और निरपेक्षता से हमारा सामाजिक जीवन उन्नत और उदात्त होना चाहिए। ऐसा होने के लिए भीरुता स्त्री का भूषण न होकर दूषण है, यह बात लड़कियों के हृदय में अंकित कर देनी चाहिए।

भीरुता की तरह 'लज्जा' भी स्त्री का एक गुण है, यह एक भ्रम लोगों में प्रचलित है। वास्तव में लज्जा गुण न होकर दोष ही है। भय की तरह वह भी बहुत बड़ा दुर्गुण है। उनके लिए मर्यादा और संयम के अर्थ में ही 'भय' और 'लज्जा' बतायी गयी है। यहां 'भय' शब्द का अर्थ 'मर्यादा' और 'लज्जा' शब्द का अर्थ 'तारतम्य' है। शिष्टाचार और शालीनता की मर्यादाएं स्त्रियों की तरह पुरुषों को भी पालनी चाहिए। शालीनता या विनय दोनों के जीवन की शोभा है। लज्जा का अर्थ विनय नहीं। लज्जा यानी कुलीनता नहीं, शालीनता नहीं। आप लोगों को बुरके में या परदे में जीने के स्थान पर खुली हवा में ही जीना आना चाहिए। अगर आप लोग कांच के बर्तन हों, तो आपको बंद अलमारी में सावधानी के साथ रखना पड़ेगा। समझ-बूझकर बचाकर आपका उपयोग करना पड़ेगा। आपको कांच का बर्तन बनने में ही भूषण मालूम पड़ता हो, तो आपके जीवन में कांच-सी चमक और पारदर्शकता अवश्य होनी चाहिए, लेकिन उसका नाजुकपन नहीं चाहिए। उसका कुरकुरापन नहीं चाहिए। विनयशीलता के साथ इस तरह के खुलेपन का कोई विरोध नहीं। □

# हिमालय में वनों की व्यावसायिक कटाई

□ सुरेश भाई



विश्व विख्यात चिपको आंदोलन के बाद सन् 1983 में भारत सरकार ने अपने पत्र संख्या 8-128/813/एफ.आर.आई. के द्वारा हिमालय की गंभीर पारिस्थितिकीय स्थिति तथा बिना किसी ऊंचाई या ढाल का ध्यान रखते हुए, शिवालिक पहाड़ियों के पाद प्रदेश तक वनों के व्यावसायिक कटान पर प्रतिबंध लगा दिया था। लेकिन इसके 10 वर्ष बाद सन् 1994 में इस आदेश को चीड़ के सूखे पेड़ों के कटान के लिए हटा दिया गया था।

उस समय यह सूचना हिमालय सेवा संघ के माध्यम से पूरे देश में पहुंचाई गयी थी। उत्तराखंड में लोग चौकन्ने हो गये थे। इसके पीछे आशंका थी कि चीड़ के वनों के नाम पर कहीं दुर्लभ वन प्रजातियों का व्यावसायिक दोहन न हो। बाद में यह तब सच साबित हुआ, जब उत्तराखंड के नौजवानों की एक पर्यावरण टीम ने गंगा नदी के उद्गम क्षेत्र में स्थित सर्वाधिक ऊंचाई वाले पर्वतों में जाकर वन निगम के मजदूरों के द्वारा हरे पेड़ों

की कटाई के प्रमाण लोगों के सामने पेश किये थे। जबकि सरकार की ओर से कहा गया था कि वे चीड़ के सूखे, सिर टूटे, उखड़े पेड़ों की कटाई के लिए प्रतिबंध हटा रहे हैं। लेकिन पर्यावरण टीम ने जब रयाला (9 हजार फीट), हर्षिल, धराली, मुखवा (9 हजार फीट), चौरंगी खाल (7 हजार फीट) आदि कई वन क्षेत्रों के बारे में खोज की, तो वहां पर राई, कैल, मुरेंडा, खर्सू, मौरू एवं देवदार के अमूल्य प्रजातियों के हरे पेड़ों की कटान के लिए छपान किया गया था। कई स्थानों पर इन प्रजातियों के पेड़ों के स्लीपर बनाकर जंगल में पड़े मिले थे। तब लोगों ने इसके खिलाफ पेड़ों पर राखी बांधकर रक्षासूत्र आंदोलन की शुरुआत की थी। यह आंदोलन सन् 2000 तक चला।

रक्षासूत्र आंदोलन ने सफलता पूर्वक टिहरी, उत्तरकाशी के लाखों हरे पेड़ों के कटान को रोका। साथ ही वन और पर्यावरण मंत्रालय की एक जांच टीम के द्वारा 121 वन कर्मियों को भी दोषी ठहराया गया। इस आंदोलन के बाद आज भी उत्तराखंड में कई स्थानों पर लोग पेड़ों पर राखी बांधकर भाईयों जैसा प्यार देते हैं।

चिन्ता की बात है कि अब पुनः केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावडेकर से उत्तराखंड सरकार चीड़ के वनों को काटने के लिए केन्द्र की स्वीकृति की इंतजार में दिखायी दे रही है। मुख्य तो इसके पीछे राजस्व कमाने का लक्ष्य है, लेकिन कहा यह जा रहा है कि चीड़ को कम करके इसके स्थान पर चौड़ी पत्ती के वनों का रोपण किया जायेगा। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि चीड़ के वन कुल वन क्षेत्र के 17 प्रतिशत क्षेत्रफल में फैले हुए हैं। यह मिश्रित वनों के बीच में भी अपना स्थान बना रहा है। यह भी है कि चीड़ की पत्तियां और फल ग्रीष्मकालीन के समय वनों में आग फैलाने का कारण भी बन रही है। लेकिन यह भी सच्चाई है कि हर वर्ष असफल वृक्षारोपण के संकेतों को भी वनों में आग लगाकर मटियामेट करने का कारण भी बताया जाता है।

लेकिन इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि वन विभाग ने भी चीड़ की नर्सरी और चीड़ के पेड़ों का रोपण करके हिमालय क्षेत्र में इसको फैलाया है। इसके कारण उत्तराखंड समेत सभी हिमालय क्षेत्र में जंगल चीड़ बाहुल्य हैं। यहां के गांव को जलाउन की आपूर्ति व इसकी पत्तियों को पशुओं के नीचे बिछाकर गोबर भी बनाया जाता है। चीड़ से लीसा निकालकर उत्तराखंड की सरकार को प्रतिवर्ष 57 करोड़ का राजस्व मिलता है। आंकड़ों के अनुसार उत्तराखंड में ही प्रतिवर्ष 23.66 लाख टन चीड़ की पत्तियां जमीन पर गिरती हैं। परंतु पंतनगर विश्व-विद्यालय की लैब में किये गये एक प्रयोग से पता चला कि कैल्सियम युक्त पानी को चीड़ की सूखी पत्तियों (पिरूल) से गुजारने के बाद यह कैल्सियम मुक्त हो जाता है। इसका मतलब हुआ कि यह नदियों में भी हो सकता है। इसके साथ ही बहुत व्यावसायिक लाभ भी चीड़ देता है, जिसके कारण बार-बार प्रतिबंध लगता और हटता है। इसी आड़ में बहुमूल्य चौड़ी पत्ती बांझ, कैल, मौरू, राई आदि दुर्लभ वन प्रजातियों का व्यावसायिक दोहन आसान होता है।

सन् 1994 में हटे प्रतिबंध के विरोध में रक्षासूत्र आंदोलन की पहल पर तत्कालीन प्रमुख वन संरक्षक विद्याभूषण गौड़ और भागीरथी वृत्त के वन संरक्षक आनंद सिंह नेगी ने अपनी रिपोर्ट में चीड़ के अतिरिक्त अन्य दुर्लभ प्रजातियों के बड़े पैमाने पर हुए व्यावसायिक दोहन का खुलासा भी किया था। उन्होंने वन निगम को इसके लिए सर्वाधिक दोषी बनाया था। इस प्रकार लाभ-हानि दोनों के बीच तौलकर देखा जाय तो चीड़ को कुल्हाड़ी लेकर एकदम काट देने से पहाड़ों की हरियाली गायब हो जायेगी। भूस्खलन के साथ बाढ़ एवं भूमि कटाव की समस्या पैदा हो जायेगी। चौड़ी पत्ती के वनों की मात्रा इतनी नहीं है कि वह पहाड़ों में भूस्खलन रोक सकें। केवल केन्द्र की स्वीकृति के बाद वे अपनी →

## गांधीजी का पर्यावरण मंत्र संयम, स्वावलंबन और सोनखाद

□ अरुण तिवारी



“मोदी का स्वच्छता विचार, कचरा बटोरना तो जानता है, किन्तु उसका प्रकृति अनुकूल उचित निष्पादन करना नहीं जानता। गांधी, दोनों जानते थे। गांधी जानते थे कि यदि कचरे का निष्पादन उचित तरीके से न हो, तो ऐसा निष्पादन पर्यावरण का दोस्त होने की बजाय, दुश्मन साबित होगा।”

→ कैबिनेट के द्वारा प्रस्ताव पास करके वनों की व्यावसायिक कटाई का रास्ता खोलने वाले हैं।

सर्वविदित है कि राज्यों में वनों के विदोहन के लिए वन निगम जैसी व्यवस्था बनी हुई है। जिसने अपनी स्थापना सन् 1973-74 से लेकर आज तक केवल वनों को काटकर मुनाफा कमाया है, उन्हें जब पुनः कटान की स्वीकृति मिलेगी तो वह सबसे पहले अपनी कमाई के लिए अंधाधुंध कटान को महत्व देगा। जबकि उच्चतम न्यायालय के 12 दिसंबर 1996 के आदेश के अनुपालन

कचरा, पर्यावरण का दुश्मन है और स्वच्छता, पर्यावरण की दोस्त। कचरे से बीमारी और बदहाली आती है और स्वच्छता से सेहत और समृद्धि।

ये बातें महात्मा गांधी भी बखूबी जानते थे और हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी भी। इसलिए गांधीजी ने स्वच्छता को, स्वतंत्रता से भी ज्यादा जरूरी बताया। मैला साफ करने को खुद अपना काम बनाया। गांवों में सफाई पर विशेष लिखा और किया। कुम्भ मेले में शौच से लेकर सुर्ती की पीक भरी पिचकारी से हुई गंदगी से चिन्तित हुए। श्रीमान मोदी ने भी स्वच्छता को प्राथमिकता पर रखते हुए स्वयं झाड़ू लगाकर अपने प्रधानमंत्रित्व काल के पहले ही वर्ष 2014 में गांधी जयंती को ‘स्वच्छ भारत मिशन’ की शुरुआत की। वर्ष 2019 में गांधी जयंती के 150 साल पूरे होने तक 5000 गांवों में दो लाख शौचालय तथा एक हजार शहरों में सफाई का लक्ष्य भी रखा। स्वच्छता सप्ताह के रूप में बाल दिवस से स्कूलों में विशेष स्वच्छता अभियान भी चलाया, किन्तु यदि मुझसे कोई पूछे कि पर्यावरणीय अनुकूलता की दृष्टि से गांधी और मोदी के स्वच्छता विचार में फर्क क्या है?... तो मेरा जवाब यूं होगा— “मोदी का स्वच्छता विचार, कचरा बटोरना तो जानता है, किन्तु उसका प्रकृति अनुकूल उचित निष्पादन करना

में बनायी गयी विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट में वन निगम की कार्यशैली में आमूलचूल परिवर्तन की सिफारिश की गयी है। जिस पर राज्यों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया है। सन् 1988 की वन नीति में वनों को गांव के अधिकार और नियंत्रण से बाहर रखा गया है। कहीं भी लोगों को पूछकर सूखे पेड़ों का निस्तारण आज तक नहीं हुआ है। जबकि लोगों का जीवन वनों पर निर्भर है। विषैली कार्बन को सोखने और जलस्रोतों व नदियों को प्राण देने वाले वनों की सेवा पर्यावरण

नहीं जानता। गांधी, दोनों जानते थे। गांधी जानते थे कि यदि कचरे का निष्पादन उचित तरीके से न हो, तो ऐसा निष्पादन पर्यावरण का दोस्त होने की बजाय, दुश्मन साबित होगा।”

मोदीजी ने खुले शौच से होने वाली गंदगी से निजात का उपाय सेप्टिक टैंक अथवा सीवेज पाइपों में कैद कर मल को बहा देने में सोचा। संप्रग सरकार की निर्मल ग्राम योजना में भी बस गांव-गांव शौचालय ही बनाये गये थे, किन्तु ठेठ गांवों के मामले में गांधी सिद्धान्ततः इसके खिलाफ थे।

### शौचालय नहीं, सोनखाद

शहरों के मामले में गांधी की यह राय अवश्य थी कि शहरों की सफाई का शास्त्र हमें पश्चिम से सीखना चाहिए, किन्तु वह गांवों में खुले शौच का विकल्प शौचालय की बजाय, शौच को एक फुट गहरे गड्ढे में मिट्टी से ढंक देना मानते थे। सहज भाषा व भाव में उन्होंने इस विकल्प को ‘टट्टी पर मिट्टी’ का नाम दिया। ‘मेरे सपनों का भारत’ पुस्तक में वह सफाई और खाद पर चर्चा करते हुए लिखते हैं— “इस भयंकर गंदगी से बचने के लिए कोई बड़ा साधन नहीं चाहिए; मात्र मामूली फावड़े का उपयोग करने की जरूरत है।” दरअसल, गांधीजी, शौच और कचरे को सीधे-सीधे ‘सोन खाद’ में बदलने के पक्षधर थे। वह जानते थे कि मल को सम्पत्ति

संरक्षण के लिए सर्वोपरि महत्व रखती है।

उत्तराखंड की सरकार चीड़ के नाम पर लाखों पेड़ों को काटने के लिए जितनी उत्सुक है, उतनी बृहद स्तर पर चौड़ी पत्ती के वनों के रोपण के लिए नहीं है।

यदि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने चीड़ के पेड़ों के नाम पर फिर से प्रतिबंध हटाया तो इसके विरोध में वे तमाम चिरपरिचित हस्तियां अभी मौजूद हैं, जिन्हें सरकार ने भी पुरस्कारों से नवाजा है। अब सीधे वनों को वनवासियों को सौंपने की मांग उठ जायेगी। □

में बदला जा सकता है। श्री मोदीजी को भी यह जानना चाहिए।

गांधीजी कहते थे कि इससे अनाज की कमी पूरी की जा सकती है। इस सत्य को गांव के लोग आपको आज भी इस उदाहरण के तौर पर बता सकते हैं कि बसावट की बगल के खेत की पैदावार अन्य खेतों की तुलना में ज्यादा क्यों होती है। आधुनिक भारत का सपना लेकर चलने वाले नेहरू से लेकर 'हरित क्रांति के योजनाकारों ने भी इसे नहीं समझा। वे विकल्प के तौर पर रासायनिक उर्वरक और रासायनिक कीटनाशक ले आये। जिसका खामियाजा प्राकृतिक जैव विविधता की हत्या, मिट्टी की दीर्घकालिक उपजाऊ क्षमता में कमी और सेहत के सत्यानाश के रूप में हम आज तक झेल रहे हैं। मोदीजी, ऐसा न होने दें।

इस बात को वैज्ञानिक तौर पर यूँ समझना चाहिए। गांधीजी लिखते हैं—“मल चाहे सूखा हो या तरल, उसे ज्यादा-से-ज्यादा एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर जमीन में गाड़ दिया जाय। जमीन की ऊपरी सतह सूक्ष्म जीवों से परिपूर्ण होती है और हवा एवं रोशनी की सहायता से, जो कि आसानी से वहाँ पहुंच जाती है; वहाँ जीव, मल-मूत्र को एक हफ्ते के अंदर एक अच्छी, मुलायम और सुगंधित मिट्टी में बदल देते हैं।” सोपान जोशी की पुस्तक 'जल मल थल' इस बारे में और खुलासा करती है। वह बताती है कि एक मानव शरीर एक वर्ष में 4.56 किलो नाइट्रोजन, 0.55 किलो फॉस्फोरस और 1.28 किलो पोटैशियम का उत्सर्जन करता है। 115 करोड़ की भारतीय आबादी के गुणांक में यह मात्रा करीब 80 लाख टन होती है। मानव मल-मूत्र को शौचालयों में कैद करने से क्या हम हर वर्ष प्राकृतिक खाद की इतनी बड़ी मात्रा खो नहीं देंगे?

त्रिकुण्डीय प्रणाली वाले 'सेप्टिक टैंक तथा मल-मूत्र को दो अलग-अलग खांचों में

भरकर हम 'इकोसन' के रूप में यह मात्रा कुछ बचा जरूर सकते हैं, लेकिन यह हम कैसे भूल सकते हैं कि खुले में पड़े शौच के कम्पोस्ट में बदलने की अवधि दिनों में है और सीवेज टैंक व पाइप लाइनों में पहुंचे शौच की कम्पोस्ट में बदलने की अवधि महीनों में; क्योंकि इनमें कैद मल का सम्बन्ध मिट्टी, हवा व प्रकाश से टूट जाता है। इन्हीं से सम्पर्क में बने रहने के कारण खेतों में पड़ा मानव आज भी हमारी बीमारी का उतना बड़ा कारण नहीं है, जितना बड़ा कि शोधन संयंत्रों के बाद हमारी नदियों में पहुंचा मानव मल।

### कचरा निष्पादन का सिद्धांत

गांवों में मानव मल निष्पादन का गांधी तरीका, कचरा निष्पादन के सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत के पूरी तरह अनुकूल है। सिद्धांत है कि कचरे को उसके स्रोत पर निष्पादित किया जाये। कचरा चाहे मल हो या मलबा, कचरे को ढोकर ले जाना वैज्ञानिक पाप है। अनुभव बताता है कि शौचालय कभी कहीं अकेले नहीं जाता। शौचालय के पीछे-पीछे जाती है मोटर-टंकी और बिजली-पानी की बढ़ी हुई खपत। एक दिन जलापूर्ति की पाइप लाइनें उस इलाके की जरूरत बन जाती है। राजस्व के लालच में सीवर की पाइप लाइनें सरकार पहुंचा देती है। इससे कचरा और सेहत के खतरे बिना न्योते ही चले जाते हैं। दुनिया में हर जगह यही हुआ है। हमारे यहां यह ज्यादा तेजी से आयेगा। क्योंकि हमारे पास न मल शोधन पर लगाने को पर्याप्त धन है और न इसे खर्च करने की ईमानदारी। हकीकत यही है। अभी शहरों के मल का बोझ हमारी नगर निगम व पालिकाओं से सँभाले नहीं सँभल रहा। जो गांव पूरी तरह शौचालयों से जुड़ गये हैं, उनका तालाबों से नाता टूट गया है। गंदा पानी तालाबों में जमा होकर उन्हें बर्बाद कर रहा है। जरा सोचिए! अगर हर गांव, हर घर में शौचालय हो गया, तो हमारी निर्मलता और 'सुनहली खाद' कितनी बचेगी?

### शौचालय नहीं, घर-घर कम्पोस्ट से बनेगी बात

समझने की बात है कि एकल होते परिवारों के कारण मवेशियों की घटती संख्या और परिणामस्वरूप घटते गोबर की मात्रा के कारण जैविक खेती पहले ही कठिन हो गयी है। कचरे से कम्पोस्ट का चलन अभी घर-घर अपनाया नहीं जा सका है। अतः गांधी जयंती पर स्वच्छता, सेहत, पर्यावरण, गो, गंगा और ग्राम-रक्षा से लेकर आर्थिकी की रक्षा के चाहने वालों को पहला संदेश यही है कि गांवों में 'घर-घर शौचालय' की बजाय, 'घर-घर पानी निकासी गड्ढा' और 'घर-घर कम्पोस्ट' के लक्ष्य पर काम करें। कचरा निष्पादन हेतु गांधीजी ने कचरे को तीन वर्ग में छंटाई का मंत्र बहुत पहले बताया और अपनाया था; पहले वर्ग में वह कूड़ा, जिससे खाद बनायी जा सकती हो। दूसरे वर्ग में वह कूड़ा, जिसका पुनः उपयोग सम्भव हो, जैसे हड्डी, लोहा, प्लास्टिक, कागज, कपड़े आदि। तीसरे वर्ग में उस कूड़े को छांटकर अलग करने को कहा, जिसे जमीन में गाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। कचरे के कारण, जलाशयों और नदियों की लज्जाजनक दुर्दशा और पैदा होने वाली बीमारियों को लेकर भी गांधीजी ने कम चिन्ता नहीं जताई।

गोरक्षा और सेवा के महत्त्व बताते हुए भी गांधीजी ने गोवंश के जरिये, खेती और ग्रामवासियों के स्वावलम्बन का ही दर्शन सामने रखा। वह इसे कितना महत्त्वपूर्ण मानते थे, आप इसका इंदाजा इसी से लगा सकते हैं कि उन्होंने गोवंश रक्षा सूत्रों को बार-बार समाज के समक्ष दोहराया ही नहीं, बल्कि जमनाललाजी जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को गो-पालन कार्य को आगे बढ़ाने का दायित्व सौंपा। वह जानते थे कि जो खेती की रक्षा के लिए सच है, वही गोवंश की रक्षा के लिए भी सच है। व्यापक संदर्भ में गांधीजी बार-बार कहते थे कि हमारे जानवर, हिन्दुस्तान और



दुनिया के गौरव बन सकते हैं। पर्यावरणीय गौरव इसमें निहित है ही।

### दिमाग शुद्ध, तो पर्यावरण शुद्ध

गांधी साहित्य, पर्यावरण के दूसरे पहलुओं पर सीधे-सीधे भले ही बहुत बात न करता हो, लेकिन संयम, सादगी, स्वावलंबन और सच पर आधारित और सही मायने में सभ्य और सांस्कारिक उनका जीवन-दर्शन, पर्यावरण की वर्तमान सभी समस्याओं के समाधान प्रस्तुत कर देता है। एकादश व्रत भी एक तरह से मानव और पर्यावरण के संरक्षण और समृद्धि का ही व्रत है। “प्रकृति हरेक की जरूरत पूरी कर सकती है, लेकिन लालच एक व्यक्ति का भी नहीं।” जब गांधी यह कहते हैं, तो इसी के साथ आधुनिकता और तथाकथित विकास के दो पगलाये घोड़ों के हम सवारों को लगाम खींचने का निर्देश स्वतः दे देते हैं।

### कितनी उचित उलटबांसी?

गंदगी, अच्छाई या बुराई...इस दुनिया में जो कुछ घटता है, वह हकीकत में घटने से पहले किसी ने किसी के दिमाग में घट चुका होता है। यह बात पश्चिम ने भी समझी। गौर कीजिए कि उसने हमें पहली या दूसरी दुनिया न कहकर, ‘तीसरी दुनिया’ कहा। इस शब्द से उसने हमें मुख्य धारा से अलग-थलग, पिछड़े, गंवार, दकियानूसी और अज्ञानी होने का एहसास कराने का शब्दजाल रचा। हमारे प्रकृति अनुकूल, समय-सिद्ध व स्वयं-सिद्ध ज्ञान पर से हमारे ही विश्वास को तोड़ा, फिर अपनी हर चीज, विधान व संस्कार को आधुनिक बताकर हमें उसका उपभोक्ता बना दिया। संयम, सादगी और सदुपयोग की जगह, सभ्यता के नाम पर अतिभोग तथा ‘उपयोग करो और फेंक दो’ का असभ्य सिद्धांत थमा दिया।

सब संस्कार बदल गए। परमार्थ, फालतू काम है; स्वार्थ से ही सिद्धि है। ‘ग्लोबल वार्मिंग’, दुनिया के लिए होगी,

## सर्व सेवा संघ का 84वां अधिवेशन दिल्ली में

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) का **84वां अधिवेशन 30-31 अक्टूबर, 2015** को श्री महादेव विद्रोही की अध्यक्षता में **गांधी आश्रम, किंग्स्वै कैम्प, दिल्ली** में हो रहा है। अधिवेशन का उद्घाटन ‘फ्री प्रेस जर्नल’ के प्रधान संपादक, वरिष्ठ पत्रकार एवं ‘चंबल की बंदूक : गांधी के चरणों में’ तथा ‘बिहार आंदोलन : एक सिंहावलोकन के लेखक **श्री श्रवण गर्ग** करेंगे। आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले जुझारू नेता एवं ‘एकता परिषद’ के अध्यक्ष **श्री पी. वी. राजगोपाल** अधिवेशन के मुख्य अतिथि होंगे।

खेती-किसानी एवं सर्वोदय- आंदोलन, नशाबंदी तथा वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति में सर्वोदय आंदोलन की भूमिका इस अधिवेशन के मुख्य विषय होंगे। देश के विभिन्न भागों से 500 से अधिक ‘सर्वोदय कार्यकर्ता’

तुम्हारे लिए तो ए.सी. है। अपना कमरा, अपनी गाड़ी के भीतर टंडक की तरफ देखो; दुनिया जाये भाड़ में। घर का कचरा बाहर और अतिभोग का सुविधा-सामान अंदर। इसके लिए अब सिर्फ पेट नहीं, तिजोरी भरो। इसीलिए खेती-बाड़ी, निकृष्ट बता दी गयी और दलाली, चाकरी से भी उत्तम। नई नीति है : गांव हटाओ, शहर बसाओ। कर्ज लो, घी पीयो।

नदियां मारने के लिए कर्ज लो। नदियों को जिलाने के लिए कर्ज लो। कुदरती जंगल काटो; खेत बनाओ या इमारती जंगल लगाओ। जानते हुए भी कि यह धरती का पेट खाली कर पानी की कंगाली का रास्ता है; हमने नदी-तालाब से सिंचाई की बजाय, नहर और धरती का सीना चाक करने वाले ट्यूबवेल, बोरवेल, समर्सिबल, जेटपम्प को अपना लिया। सेप्टिक टैंकों से भी आगे बढ़कर सीवेज पाइपों वाले आधुनिक हो गये। यूकेलिप्टस याद रहा; पंचवटी भूल गए। जहां

सम्मेलन में शिरकत करेंगे।

ज्ञातव्य है कि सर्व सेवा संघ गांधी-विचार की शीर्ष राष्ट्रीय संस्था है। इसकी स्थापना के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने खुद सम्मेलन बुलाया था, पर उनके असामयिक निधन के बाद 13-15 मार्च 1948 को सेवाग्राम में **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता** में हुए सम्मेलन में इसकी स्थापना हुई। इस सम्मेलन में **पं. जवाहर लाल नेहरू, आचार्य कृपलानी, डॉ. जाकिर हुसैन, काका कालेलकर** आदि राष्ट्रीय नेताओं की भी उपस्थिति रही।

सर्व सेवा संघ गांधी-विचार का प्रचार-प्रसार, भूदान-ग्रामदान, स्वदेशी, नशाबंदी, अस्पृश्यता-निवारण, बुनियादी शिक्षा, सर्वधर्म समभाव आदि के क्षेत्रों में देश के 23 राज्यों में कार्य कर रहा है। —**मारोती गावंडे**

कार्यालय मंत्री, सर्व सेवा संघ

जरूरी हो; जहां कोई और विकल्प शेष न हो; किन्तु सभी जगह? यह कितना ठीक है? जहां जेब अनुमति दे; इसी एक शर्त पर सारे निर्णय! ओफ़फ़!!

### बापू का रास्ता

इन सब उलटबांसियों के बीच रास्ते बनाते हुए आज एक बार फिर दुबला-पतला बूढ़ा, सेवाग्राम संचालकों से कहना चाहता है—“खजूरी, गरीबों का वृक्ष है। उसके उपयोग तुम्हें क्या बताऊं। अगर सब खजूरी कट जाये, तो सेवाग्राम का जीवन बदल जायेगा। खजूरी हमारे जीवन में ओतप्रोत है।...खजूरी के उपयोग का हिसाब करो।” जिस महात्मा गांधी को खजूरी जैसे सहज उपलब्ध दरख्त और छोटी-से-छोटी पेंसिल को सहेजने और उसका हिसाब रखने जैसी बड़ी-बड़ी आदतें थीं; पर्यावरण और स्वच्छता के उनके सिद्धांतों को लिखकर या पढ़कर नहीं, बल्कि आदत बनाकर ही जिन्दा रखा जा सकता है। आइए, बनाएं। □

## क्या कर्तव्यहीन

## मनुष्य

## धरती पर बोझ नहीं

□ सुरेश नौटियाल

“आज धरती का तापमान बढ़ने से जलवायु परिवर्तन की जो स्थितियां बनी हैं, उनके लिए केवल और केवल मानव ही जिम्मेदार है। आदम युग से लेकर आज के अत्याधुनिक युग तक को देखें तो सहज ही मालूम हो जायेगा कि मनुष्य के अलावा धरती पर कोई भी जीव-जन्तु या कीड़ा-मकोड़ा नहीं है, जिसने अपनी जीवन-पद्धति में कोई आमूल परिवर्तन किया हो।”

कुछ अपवादों को छोड़कर मनुष्य अंततः पर्यावरण और पारिस्थितिकी का यदि शत्रु नहीं तो मित्र भी नहीं है। उसके मूल आचरण में ऐसे तत्त्व बहुत कम हैं, जो उसे धरती का मित्र साबित करते हों। शायद यही कारण रहा होगा कि मनीषियों को विभिन्न धर्मशास्त्रों और आख्यानों में पृथ्वी के महत्त्व का वर्णन करना पड़ा और मनुष्य का आह्वान करना पड़ा कि उसे धरती के स्वास्थ्य और संरक्षण की निरंतर चिन्ता करनी है।

कम-से-कम पांच सहस्राब्दि पूर्व ऋषि अथर्वन द्वारा रचित चौथे और अंतिम वेद ‘अथर्ववेद’ के बारहवें अध्याय में ‘पृथिवी’ सूक्त है। इस सूक्त में पूरी मानव जाति के लिए शाश्वत संदेश है, जिसमें सहिष्णुता और सदाशयता की पराकाष्ठा है। इसमें मानव-पर्यावरण संबंधों का उल्लेख आज भी अपने रचनाकाल जितना या सम्भवतः उससे भी अधिक सार्थक है।

वरिष्ठ पत्रकार मधुकर उपाध्याय ने ‘पृथिवी’ सूक्त और उस पर श्रीनिवास सोहोनी की टीका पढ़ने के बाद इस सूक्त का भावानुवाद किया, जो पुस्तक के रूप में 1992 में भारतीय पर्यावरण समिति ने प्रकाशित किया। ‘पृथिवी’ नामक इस पुस्तक की भूमिका में मधुकर उपाध्याय ने लिखा है कि ‘पृथिवी’ सूक्त मानवमात्र के उत्कर्ष की कामना का समूहगान है। इसमें पृथ्वी को जिन रूपों में देखा गया है उसमें देश, काल, रंग, जाति, धर्म, भाषा, लिंग आदि का कोई स्थान नहीं है। ऋषि अथर्वन की अवधारणा में पृथ्वी मां का स्वरूप है और मानव उसका पुत्र।

इस सूक्त में कहा गया है कि मानव का जीवन उसकी संस्कृति, स्वरूप और अस्तित्व सब धरती पर आधारित है, इसलिए मनुष्य को इसका उपभोग करना चाहिए। पर साथ ही, इसकी सीमाएं निर्धारित की गयी हैं और मानव से अपेक्षा की गयी है कि यह उपभोग सृजनात्मक हो, सीमित हो तथा पृथ्वी को अपकार पहुंचाए बिना हो, जिसमें उसके मूल तत्त्वों को न छुआ जाये।

ऋषि अथर्वन ने संपूर्ण मानव जाति की ओर से इस सूक्त के 35वें श्लोक में कहा है कि “यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोह तु, मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयर्पिपम।” अर्थात् ओ पावन धरती तुम्हें और तुम्हारे मूल तत्त्वों को चोट पहुंचाए बिना हम इस मिट्टी का सृजनात्मक उपयोग करें।

मनुष्य किस प्रकार से धरती को हानि पहुंचाता है, इसका एक उदाहरण मैं यहां देता

हूं। मेरी पत्नी ने बारह-चौदह साल पहले दिल्ली के रोहिणी में डीडीए का एक एमआईजी फ्लैट बैंक से लोन लेकर खरीदा था। इस वर्ष फरवरी में वह सरकारी नौकरी से रिटायर हुई तो सरकारी फ्लैट से डीडीए फ्लैट में शिफ्ट होने की मजबूरी बनी और किरायेदार द्वारा लगभग गुफा बना दिये गये फ्लैट को रहने लायक घर बनाना आवश्यक हो गया।

परिणामस्वरूप, ढाई महीने से अधिक समय तक यह काम चला। मैं सप्ताह में दो-चार दिन 35 किमी का एक ओर का सफर तय कर आयुर्विज्ञान नगर से रोहिणी जाता, काम करने वालों पर नजर रखता और सोचता रहता कि घर ठीक करवा रहा हूं या प्रकृति को नुकसान पहुंचा रहा हूं? यह भी सोचता रहता कि जब एक छोटा-सा घर ठीक करने में पर्यावरण और पारिस्थितिकी को इतना नुकसान होता है तो बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने में और फिर पूरा शहर बसाने में कितना नुकसान होता होगा। और यह भी कल्पना करता कि दुनिया के लाखों शहरों-कस्बों को बनाने में प्रकृति को कितना नुकसान पहुंचा होगा।

और हां, मकान बनाने या उसकी मरम्मत करने में जितनी वस्तुओं का उपयोग होता है, उनमें शायद ही कोई चीज होती होगी, जिससे धरती, उसके पर्यावरण और उसकी पारिस्थितिकी को हानि न पहुंचती हो। उदाहरण के लिए जिन वस्तुओं का इस्तेमाल हमारे फ्लैट को ‘रहने लायक’ बनाने में इस्तेमाल किया गया, वे हैं : पानी, रेत-बजरी, बदरपुर, रोड़ी, दाना, ग्रेनाइट, मार्बल, सीमेंट, ईट, लोहा, तांबा, इमारती लकड़ी के अनेक उत्पाद यथा प्लाई, बांस, एल्युमिनियम, शीशा, प्लास्टिक, पीवीसी, थिनर, फेवीकोल, रासायनिक रंग, सेरेमिक, प्लास्टर ऑव पेरिस और न जाने क्या-क्या।

उपरोक्त वस्तुओं में से एक भी ऐसी नहीं है, जिससे पर्यावरण और पारिस्थितिकी को नुकसान न पहुंचा हो। हमने अपने 80-85

मीटर के घर को ठीक करने में यदि इतना नुकसान पहुंचाया तो धरती की छाती पर बोझ की तरह खड़े करोड़ों-करोड़ों मकानों-भवनों के निर्माण ने क्या-क्या नुकसान न पहुंचाया होगा? और हां, मनुष्य जीवन भर इस धरती को नुकसान पहुंचाता रहता है। यह नित्य-प्रतिदिन होता रहता है। तो ऐसे में क्या यह कहें कि धरती से मानव अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए? पर, तब यह सवाल भी तो पैदा हो सकता है कि धरती का महत्त्व मनुष्य के बिना कितना होगा?

इस प्रश्न की गूढ़ता में जाये बिना यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आज धरती का तापमान बढ़ने से जलवायु परिवर्तन की जो स्थितियां बनी हैं, उनके लिए केवल और केवल मानव ही जिम्मेदार है। आदम युग से लेकर आज के अत्याधुनिक युग तक को देखें तो सहज ही मालूम हो जायेगा कि मनुष्य के अलावा धरती पर कोई भी जीव-जन्तु या कीड़ा-मकोड़ा नहीं है, जिसने अपनी जीवन-पद्धति में कोई आमूल परिवर्तन किया हो।

जिन जीव-जन्तुओं ने अपनी जीवन-पद्धति में थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया भी है, उसके लिए भी मानव ही दोषी है। यदि जंगलों में निवास करने वाले बंदरों को सड़कों के किनारे भिखारियों की तरह बैठे रहने को मजबूर किया है तो उसके लिए हम ही जिम्मेदार हैं। ऐसे ही अनेक वन्य जीवों की जीवन-पद्धति में आये परिवर्तन के लिए भी मानव ही जिम्मेदार है। उत्तराखंड की तराई में यदि हाथी घरों में घुस रहे हैं तो इसके लिए भी हाथी नहीं, हम जिम्मेदार हैं।

यही मनुष्य इस प्यारी धरा को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाता है। कल्पना करें कि यह धरती कितनी सुंदर रही होगी जब इस पर मनुष्य नामक प्राणी मूल अवस्था यानी आदम अवस्था में रहा होगा।

खैर, वह इस धरती पर पैदा हुआ और उसने धीरे-धीरे इसकी विरासत को हड़पना शुरू कर दिया। शुरू-शुरू में यह नुकसान

ज्यादा नहीं था, पर जैसे-जैसे वह अपने को सामाजिक, तथाकथित सभ्य और सम्पन्न बनाता गया, वैसे-वैसे वह धरती का दुश्मन बनता चला गया। और दुर्भाग्य से हम ऐसे समय में पैदा हुए हैं, जब मनुष्य धरती का सबसे बड़ा दुश्मन बन चुका है। उदाहरण एक नहीं है। यहां एक व्यक्तिगत उदाहरण पूरे विषय पर प्रकाश डाल देगा।

एक बार फिर से लिखता हूं कि जब एक छोटे से घर की मरम्मत में इतना कुछ गंवाना पड़ा तब दुनिया के सब गांवों, कस्बों, शहरों से लेकर सड़कों, बांधों, पुलों, रेल-लाइनों, बिजली-लाइनों और बड़ी-बड़ी आधारभूत परियोजनाओं को बनाने में धरती की विरासत को कितना नुकसान नहीं हुआ होगा। इस बारे में किसी भी व्यक्ति या देश के पास आंकड़े नहीं होंगे और हो भी नहीं सकते, पर यदि होते तो वे कितने चौंकाने वाले होते। जिस प्रकार हमारे पर्यावरणविद एकोलोजीकल कम्पेनशेन की बात करते हैं, वह अजीब है क्योंकि ऐसा न तो है और न ही हो सकता है। पर, अब हम अब ऐसा क्या कर सकते हैं कि नुकसान तीव्रता से न हो।

मुझे तो कभी थोरो याद आते हैं और कभी महात्मा गांधी। कभी गांधी की यह बात कि धरती पर मनुष्य के लिए सब कुछ है पर उसके लालच के लिए नहीं तो कभी गांधी से भी पहले हुए थोरो के सरल और सादे जीवन के बारे में प्रवचन।

धरती को हो चुके नुकसान की भरपाई की सम्भावना तो दिखायी नहीं देती पर अगर पूरी मानवता तय कर ले कि अब और नुकसान नहीं पहुंचाना है तो कुछ बातों पर गौर करना पड़ेगा। सबसे पहले तो हमें अपनी आबादी पर अंकुश लगाना होगा। अत्यधिक जनसंख्या के कारण धरती के सीमित संसाधनों और धरोहरों पर अनावश्यक बोझ बढ़ रहा है। आवास, कृषि-खेती-भोजन, पानी जैसी मूल समस्याएं बढ़ रही हैं।

आवास, भोजन और पानी की

उपलब्धता कम होने के कारण स्वास्थ्य, शिक्षा, आवागमन-परिवहन इत्यादि का संकट भी बढ़ रहा है। और इन समस्याओं के बढ़ने से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकट भयावह रूप लेते जा रहे हैं। समाज में हिंसा बढ़ रही है, मानवीय रिश्ते प्रभावित हो रहे हैं और संक्षेप में समाज बिखर रहा है। और, इन सब तत्वों के उग्र होने से धरती का तापमान बढ़ रहा है और जलवायु परिवर्तन की स्थिति भयावह होती जा रही है।

पर सार तो यह है कुछ जीव-जन्तुओं द्वारा अपनी जीवन-पद्धति में परिवर्तन किया भी गया है, तब भी उन्होंने मनुष्य की तरह धरती को नुकसान पहुंचाकर अपने लिए विलासिता की वस्तुएं जुटाना शुरू नहीं किया है। और न ही, अपनी आवश्यकता से अधिक बटोरना शुरू किया है।

अंत में, एक बार फिर पृथिवी सूक्त के 45वें श्लोक का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसमें कहा गया है कि निर्विकार, स्थायी, शांत आवास सी पृथ्वी हमें असीमित सम्पदा और सुख देना। पर यदि मनुष्य धरती को बराबर चोट पहुंचाता रहेगा तो उसे असीमित सम्पदा और सुख मिलेंगे कैसे?

(‘इंडिया वाटर पोर्टल, हिन्दी’)

□

## आवश्यक सूचना

### ‘सर्वोदय जगत’

के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों,  
लेखकों व शुभ-चिन्तकों को  
सूचित करना है कि  
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की  
वेबसाइट

[www.sssprakashan.com](http://www.sssprakashan.com)

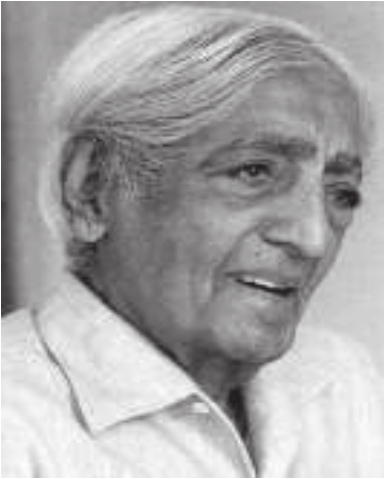
पर ‘सर्वोदय जगत’ का  
प्रत्येक अंक उपलब्ध  
कराया जा रहा है।

कृपया वेबसाइट देखें।

गतांक से आगे...

## जीवन की किताब क्या कहती है?

□ जे. कृष्णमूर्ति



और तब अगला अध्याय कहता है, चिरकाल से मनुष्य भय के साथ जीता आया है। भय, न केवल प्रकृति का, परिस्थिति-परिवेश का, बीमारी, दुर्घटनाओं आदि का भय; बल्कि भय की कहीं गहरी और परतें भी हैं, भय की गहराती, अचेतन और अपरिचित रहें। तो हम यह किताब साथ-साथ पढ़ने जा रहे हैं, अध्याय पूरा होने पर्यन्त। और यह कह रही है, “इसे देखिए, और आप इसका अंत करने में सक्षम होंगे।” हम इस किताब को इतने ध्यान से, इतने धीरज के साथ पढ़ने जा रहे हैं कि जब आप यह अध्याय पढ़ चुके होंगे, आप अपने मन को सारे-के-सारे भय से मुक्त पायेंगे।

किताब फिर कहती है—अगले पन्ने पर—भय क्या है? उदय कैसे होता है उसका? उसकी प्रकृति क्या है? मनुष्य ने अब तक इस समस्या का समाधान क्यों नहीं किया है? वह इसके साथ जिये क्यों जा रहा है? क्या वह इसका अभ्यस्त हो चुका है?

क्या उसने इसे जिन्दगी के एक ढर्रे के तौर पर मंजूर कर लिया है? क्यों नहीं आपने इस समस्या का समाधान कर लिया, ताकि आपका मन भय से पूरी तरह मुक्त हो जाए? क्योंकि जब तक भय है, आप अंधकार में जीते हैं। उस अंधकार के फलस्वरूप आप चाहे जिसकी पूजा-अर्चना कर सकते हैं, और वह पूजा-अर्चना उस अंधकार के चलते ही घटित हो रही है, इसलिए आपके द्वारा की जा रही पूजा-अर्चना पूरी तरह से बेमानी है। अतः यह बहुत महत्वपूर्ण है कि भय की प्रकृति के बारे में और आगे पढ़ा जाये।

अब अगर आप करीब से निरीक्षण-परीक्षण करते हैं, अगर आप इस किताब को—जो कि आप हैं—पढ़ते हैं, इसके हर शब्द को, तो यह आपसे पूछती है : भय उगता कैसे है? क्या वह बीती बातों की याद है, किसी दर्द की याद है, आप द्वारा किये गये किसी ऐसे कार्य की याद है जो आपको नहीं करना चाहिए था; कोई झूठ जो आपने बोला है और आप नहीं चाहते कि वह पकड़ा जाए और आपको डर है कि कहीं वह पकड़ा गया तो? कोई ऐसा कृत्य जो आपके मन में विकृत ले आया है और आप उस विकृति से, उस कृत्य से भयभीत हैं? हो सकता है आप भविष्य को लेकर डरे हुए हों, या फिर आप नौकरी छूट जाने, या किसी देश के छोटे से खास बाड़े में महत्वपूर्ण नागरिक न बन पाने की आशंका से ग्रस्त हैं। तो तमाम तरह के डर हैं। लोग अँधेरे से डरते हैं, लोग अपने बारे में समाज की राय से डरते हैं, लोग मृत्यु से डरते हैं, और लोग परितुष्ट न हो पाने से डरते हैं, चाहे जो उसके मायने हों। किसी को हो सकता है, अत्यधिक पीड़ा से गुजरना पड़ा हो, शारीरिक पीड़ा से; और वह पीड़ा मन में दर्ज हो गयी हो, और उसको यह डर सताता रहे कि कहीं इस पीड़ा का फिर से न सामना करना पड़े। आपको यह सब मालूम ही है।

अब किताब कहती है, आगे और पढ़ें। भय क्या है? क्या इसे विचार ने पैदा किया है? क्या यह समय की उपज है? अभी तो मैं स्वस्थ हूँ, पर जैसे-जैसे बुढ़ापा आयेगा,

बीमारियां घेरेंगी और मुझे डर लगने लगता है—यही समय है, काल है। या फिर ऐसा है कि विचार कहता है मेरे साथ कुछ भी हो सकता है—मेरी नौकरी जा सकती है, मैं अंधा हो सकता हूँ, या हो सकता है मैं अपनी पत्नी को गंवा बैटूँ। तो क्या भय की जड़ यही है? यह किताब पूछ रही है आपसे। इसलिए पन्ना पलटिए और आपको उत्तर मिल जायेगा—अपने ही भीतर; यह वक्ता आपको नहीं बता रहा। किताब यह कह रही है कि विचार और समय भय के घटक हैं। यह कह रही है, विचार ही समय है। ठीक?

तब प्रश्न यह उठता है—अगले पन्ने पर किताब कहती है—क्या मानव-मन के लिए, आपके लिए—जो यह किताब पढ़ रहे हैं और यह किताब आप खुद ही हैं—क्या भय से पूरी तरह से मुक्त होना संभव है ताकि आपके भीतर भय का एक कतरा तक न रहे? उम्मीद है आप इसे मेरे साथ पढ़ रहे हैं; मैं इसे अकेले नहीं पढ़ रहा। किताब अब कहती है : एक बात और, यह मत पूछिए कि इसकी विधि क्या है। विधि का मतलब है दोहराव, कोई पद्धति-प्रणाली। आपके द्वारा ईजाद की गयी कोई पद्धति भय का समाधान नहीं करने जा रही, क्योंकि तब आप उस पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं, भय की प्रकृति को नहीं समझ रहे। इसलिए कोई पद्धति मत खोजते रहिये, बल्कि बस समझिए—भय की प्रकृति को, इसकी फितरत को।

किताब पूछती है—*समझने* से आपका तात्पर्य क्या है? आप ऐसा कब कहते हैं, “मैं यह बात समझ गया?” इससे आपका मतलब क्या होता है? या तो आप उस शाब्दिक संरचना को, किसी शब्द के अर्थ को समझते हैं, जो कि एक खास तरह की बौद्धिक गतिविधि है, या फिर आप उसकी सच्चाई को देख पाते हैं। जब आप इसकी सच्चाई को देख लेते हैं, तब इसका वजूद नहीं रह जाता। आपको यह साफ दिखलाई पड़ता है कि विचार और समय भय के घटक हैं, महज शाब्दिक वक्तव्य के तौर पर नहीं, बल्कि यह आपके वजूद का हिस्सा होता है। जब यह



आपके रक्त में, आपके दिमाग में, आपके दिल में पैठ जाता है कि समय ही वह घटक, वह निमित्त है, तब आप देखेंगे कि भय के लिए कोई जगह ही नहीं रही।

मुझे नहीं मालूम कि आप यह समझ पाये हैं या नहीं। भय समय और विचार की ही देन है। आगे क्या हो सकता है, इससे भयभीत हैं आप। आप अकेलेपन से भयभीत हैं; आप कभी अकेलेपन की पड़ताल नहीं करते कि इसके मायने क्या हैं, बल्कि आप इससे डरे हुए हैं, जिसका तात्पर्य है कि आप इससे दूर भाग रहे हैं। लेकिन अकेलापन तो आपकी अपनी छाया है : यह आपके पीछे-पीछे आ रही है। आप अपनी छाया से भाग नहीं सकते। तो आपमें अवलोकन के धैर्य का होना बेहद जरूरी है, जिसका अर्थ है, आपको दूर नहीं भागना है, बल्कि अवलोकन करना है, देखना है, सुनना है उसे जो यह किताब कह रही है। यह कहती है, समय 'फैक्टर' है, कारक है। तो आपको समय को समझना होगा।

किताब का कहना है कि यदि आप समय को समझ पायें, तो संभवतः भय का अंत हो सकेगा। अतः आपको यह पूछना होगा, "समय और विचार के बीच क्या संबंध है?" किताब आपसे कह रही है, "पता लगाइए, समय और विचार के बीच क्या रिश्ता है?"

विचार एक गति है, ज्ञात से ज्ञात की ओर। यह एक गति है, एक हलचल—अतीत की याद वर्तमान से मिलती है, अपने आप में कुछ फेरबदल करती है, और जारी रहती है। बीते कल से आज, और आज से आने वाले कल की ओर यह चाल ही समय की गति है। यह मानसिक समय है; यानी, मैंने जाना है कि दर्द क्या होता है, उम्मीद है यह फिर दोबारा मुझे नहीं झेलना पड़ेगा, क्या पता वह पुनः लौट आए—जो अतीत की गति है, वर्तमान से गुजरती हुई, अपने में फेरबदल करती, भविष्य की ओर बढ़ती हुई। एक समय होता है घड़ी के हिसाब से, और एक समय आंतरिक होता है : "मुझे उम्मीद है मैं वैसा बन पाऊंगा।" आप हिंसक हैं, पर आपको अहिंसक होने की आस है। आप लालची हैं,

ईर्ष्यालु हैं, लेकिन आपको आशा है कि समय के साथ, क्रमविकास के सहारे, क्रमशः आप इससे छुटकारा पा लेंगे। तो समय अतीत से वर्तमान और भविष्य की ओर एक गति है। विचार भी अतीत से ही आ रहा है—जानकारी, स्मृति, भविष्य की ओर अग्रसर गतिविधि। तो समय विचार ही है, ठीक?

अगले प्रश्न का उत्तर देना और ज्यादा मुश्किल है। इसलिए आपमें धैर्य का होना तो जरूरी है। मैं 'धैर्य' शब्द का प्रयोग एक खास अर्थ में कर रहा हूँ : धैर्य का अर्थ है समय की अनुपस्थिति। सामान्यतया धैर्य का अर्थ होता है—जल्दबाजी न करें, समय लें, तुरंत प्रतिक्रिया न करें, शांत रहें, थोड़ा सहजता से लें, दूसरे शब्दों को भी अपनी बात कहने का मौका दें, इत्यादि। तो 'धैर्य' शब्द का प्रयोग हम उस अर्थ में नहीं कर रहे हैं। हम कह रहे हैं, धैर्य का मतलब है समय को भुला ही देना, ताकि आप अवलोकन कर सकें, देख सकें। लेकिन यदि आप समय को ढोते हुए अवलोकन कर रहे होते हैं, तब आप अधीर हो जाया करते हैं। बात पकड़ में आ रही है आपके? बात कुछ ऐसी है जो असाधारण है। तो इस किताब को, इस अध्याय को पढ़ने के लिए आपको धैर्य की दरकार है; इसका कहना है कि समय भय का कारक है। विचार समय है, और जब तक विचार चल रहा है, तब तक आप भयभीत रहने ही वाले हैं।

और अगला अध्याय प्रश्न उठाता है, "क्या समय का रुक जाना संभव है? क्या समय का कोई अंत है?" समय हमारे जीवन का एक बहुत बड़ा घटक है : "मैं अभी यह नहीं हूँ, लेकिन मैं ऐसा बन जाऊंगा"..., "मैं नहीं जानता, लेकिन मैं जान लूंगा; मैं यह भाषा विशेष नहीं जानता, लेकिन मैं इसे सीख लूंगा, मुझे थोड़ा वक्त दीजिए", "समय हमारे जख्म भर देगा"। लेकिन समय तो संवेदनशीलता को कुंद कर देता है। समय स्त्री तथा पुरुष के बीच संबंध को नष्ट कर देता है। समय समझ को नष्ट कर देता है, क्योंकि समझ तो तत्क्षण घटित होती है, यह नहीं कि

"मैं समझने हेतु सीख लूंगा।" तो मैं कह रहा हूँ—यह किताब कह रही है—कि समय हमारे जीवन में असाधारण रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारे मस्तिष्क समय के माध्यम से विकसित हुए हैं। यह आपका मस्तिष्क या मेरा मस्तिष्क नहीं है, बल्कि यह मानव-मस्तिष्क है, जो कि आप हैं। आपने इस मस्तिष्क से अपना तादात्म्य कर लिया है, इसको अपना मस्तिष्क, अपना मान बैठे हैं, लेकिन यह आपका मन या आपका मस्तिष्क नहीं है; बल्कि मानव-मस्तिष्क है, जो करोड़ों वर्षों के क्रमविकास का परिणाम है। इसलिए यह मस्तिष्क, जो समय द्वारा संस्कारित, 'कन्डीशंड' है, केवल समय के अंतर्गत ही कार्य कर सकता है।

तो हम इस मस्तिष्क से कुछ ऐसा करने के लिए कह रहे हैं, जो पूर्णतः भिन्न है। किताब कहती है कि आपका मस्तिष्क, आपका मन, समय के अंतर्गत कार्य करता है; समय आपके जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आया है। जबकि समय किसी समस्या का समाधान नहीं है, सिवाय तकनीकी समस्याओं के। तो समस्या के समाधान के लिए समय का इस्तेमाल मत कीजिए, वह समस्या चाहे आपकी पत्नी और आपके बीच हो, या आपके और आपके नौकरी-धंधे के बीच, या और कुछ। इसे समझ पाना बहुत कठिन है। इस किताब को सही ढंग से पढ़ने के लिए, इस चीज पर अपना पूरा मन, पूरा ध्यान दीजिए। तो यह किताब पूछ रही है, क्या समय का अंत हो सकता है? यदि आप इसका अंत नहीं करते, तो भय अपने समस्त परिणामों के साथ जारी रहेगा। और इसका यह भी कहना है कि यह मत पूछिए समय का अंत कैसे करें। जैसे ही आप किसी से पूछते हैं कि इसका अंत कैसे करें, तो इसका मतलब होता है कि आपने यह किताब पढ़ी ही नहीं, और तब कोई आपको बस एक सिद्धांत थमा देगा।

यही यथार्थ ध्यान है—समझ रहें हैं आप? वास्तव में ध्यान यही है : इस बात की तहकीकात करना कि क्या कभी समय रुक सकता है। वक्ता का कहना है कि यह रुक

सकता है; रुकता है। जरा सँभल कर सुनें— यह बात वक्ता कह रहा है, आपकी किताब नहीं। तो अगर आप कहते हैं, “वक्ता का कहना है कि समय का अंत होता है, मुझे उम्मीद है ऐसा होता है”, और अगर आप इसमें विश्वास कर लेते हैं, तब किताब का पढ़ना नहीं हो रहा है; आप बस शब्दों में जी रहे हैं। और शब्दों में जीने से भय का विसर्जन नहीं होता है। तो आपको समय की इस किताब को पढ़ना होगा, इसमें पैठना होगा, समय की प्रकृति को खोजना-समझना होगा—कैसे आप समय को लेकर प्रतिक्रिया करते हैं, कैसे आपके संबंध समय पर आधारित हैं। “मैं आपको जानता हूँ”—यह समय ही है। इस पर गौर कीजिए। इसके ये मायने भी हैं कि जानकारी समय है। अगर आप जानकारी का इस्तेमाल उपलब्धि के, आगे बढ़ने के साधन के तौर पर कर रहे हैं, तब आप समय में जकड़े हुए हैं, और इसलिए भय, चिन्ता, यह तमाम प्रक्रिया जारी रहती है।

अतः समय के अंत की प्रकृति का अन्वेषण करने के लिए एक मौन, खामोश मन की दरकार होती है, ऐसा मन जो अवलोकन करने को स्वतंत्र है—डरा हुआ नहीं है—आपके अपने भीतर समय की जो गतिविधि है, वह उसका अवलोकन करने को स्वतंत्र है, यह देख लेने को स्वतंत्र है कि कैसे आप इस गतिविधि पर निर्भर हैं। ऐसा है, अगर कोई आपसे यह कह दे कि ‘आशा’ जैसा कुछ होता ही नहीं, तो आप भयभीत हो उठेंगे, है न? आशा समय ही है। तो आपको समय की प्रकृति की जांच-परख करनी है, इस सच्चाई को समझना-महसूस करना है कि आपका हृदय—जो एक ही है—समय के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं, समय से संस्कारबद्ध हैं। इसलिए आप कुछ ऐसा करने को कह रहे हैं जो एकदम अलग है। आप इस मस्तिष्क से, इस मन से अलग ही तरह से कार्य करने को कह रहे हैं; और उसके लिए, आपके पढ़ने में सघन अवधान की, खूब ध्यान देने की आवश्यकता है।

(‘स्वयं से संवाद’, मई 2015 से साभार) □

## हर्षोल्लास से मनायी विनोबा-जयंती

हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल एवं जिला पानीपत सर्वोदय मंडल द्वारा ग्राम देहरा के सरपंच श्री सुखपालजी के गांव में 11 सितंबर, 2015 को पूज्य संत विनोबा भावे की जयंती कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर गांव में पूर्व निर्णयानुसार प्रभातफेरी का कार्यक्रम रखा गया था। प्रभातफेरी में भाग लेने के लिए स्थानीय सरकारी हाईस्कूल में सुबह 5 बजे लगभग 50 लोग इकट्ठा हुए। खुशी की बात यह है कि प्रभातफेरी में काफी बहनों ने हिस्सा लिया।

‘उठ जाग मुसाफिर भोर हुई’ गीत गाते हुए, नारे लगाते हुए तथा संत विनोबा का परिचय देते हुए गांव की गलियों में प्रभातफेरी के माध्यम से सभी का जाना हुआ। गीत व नारों को सुनकर घरों से महिलाएं, बच्चे, बूढ़े सभी प्रभातफेरी को उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। उल्लेखनीय है कि इस गांव में पहले कभी इस तरह की प्रभातफेरी नहीं हुई थी।

कार्यक्रम की अध्यक्षता सरपंच श्री सुखपालजी ने की। मुख्य वक्ता का दायित्व श्री महावीर त्यागी ने निभाया। इस अवसर पर नवीं कक्षा की एक छात्रा ने विनोबा के जन्म (11 सितंबर, 1895) से लेकर उनकी मृत्यु (15 नवंबर, 1982) तक की मुख्य सभी घटनाओं पर अनुकरणीय प्रकाश डाला।

ऐसा अनुभव हो रहा है कि इन महापुरुषों की जयंतियों और पुण्य-तिथियों के अवसर पर ऐसे प्रेरक कार्यक्रम का आयोजन हमारे सर्वोदय के कार्यकर्ता करें तो ग्रामपंचायतें उन्हें हर वर्ष स्वयं मनाना शुरू कर सकती हैं।

15 अगस्त ‘स्वतंत्रता-दिवस’ के अवसर पर प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष स्थानीय दो विद्यालयों में बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित रहे और बच्चों को संबोधित किये।

—महावीर त्यागी

## संपादक के नाम पत्र

आदरणीय संपादक जी  
नमस्ते!

गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली में श्री रमेश भाई की मेज पर पत्रिका के दर्शन हुए। पूरी पत्रिका ही श्रेष्ठ विचारों से ओतप्रोत दिखी। ‘आबादी का बोझ’ शीर्षक से प्रकाशित अपना लेख देखकर अतिरिक्त संतोष हुआ। सप्रेम साभार!

—अरुण तिवारी,

146, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-92  
× × ×

प्रिय संपादक महोदय,

सादर नमस्कार!

‘सर्वोदय जगत’ का 16-30 सितंबर, 2015 का शिक्षा पर आधारित अंक बेहद रोचक और जानकारी परख था। ‘नव सृजन के लिए शिक्षा’ के महत्त्व एवं आवश्यकता पर सम्पादकीय बेहद अच्छी थी। वास्तव में आज हमें एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत है, जिससे वैकल्पिक रचना के निर्माण का कौशल विकसित हो सके।

इस घोर व्यावसायिक एवं प्रतिस्पर्धा के दौर में ‘सर्वोदय जगत’ जैसी प्रेरक एवं विचारात्मक पत्रिका का प्रकाशन बेहद सराहनीय और प्रशंसनीय कार्य है। इसे पढ़कर खुशी हुई। धन्यवाद!

—के. एम. भाई, कानपुर

संपर्क नं. : 08756011826

× × ×

आप सुहृद पाठकों की ई-मेल से प्राप्त हुई प्रतिक्रिया के लिए आभार! आपको पत्रिका पसंद आयी, यह जानकर संतोष हुआ। आशा करता हूँ कि आप भविष्य में भी अपने महत्त्वपूर्ण सुझावों को भेजकर हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। —संपा.

## बरेली मंडलीय सर्वोदय सम्मेलन सम्पन्न

20 सितंबर, 2015 को बरेली के विष्णु इंटर कॉलेज, प्रेम नगर में बरेली मंडलीय सर्वोदय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। बरेली मंडल के अंतर्गत बदायूं, शाहजहांपुर, पीलीभीत व बरेली जिले आते हैं। सम्मेलन में 115 साथियों ने भाग लिया।

सम्मेलन का संचालन पूर्व प्रदेश अध्यक्ष डॉ. महावीर सिंह ने तथा अध्यक्षता वरिष्ठ लोकसेवक श्री जगदीश निमिष ने की। उद्घाटन करते हुए प्रदेश अध्यक्ष डॉ. मधुसूदन उपाध्याय ने कहा कि “हमारा सामूहिक चिन्तन-प्रवाह खंड-खंड में नहीं होना चाहिए।” 9 अगस्त, 2015 को चित्रकूट प्रांतीय सम्मेलन में साथियों ने जो विचार व्यक्त किये, उन्हें संज्ञान में लेते हुए तथा उस पर कार्रवाई की समीक्षा करते हुए हमें आगे के सामूहिक चिन्तन को बढ़ाना है। उन्होंने चित्रकूट सम्मेलन का प्रतिवेदन तथा उसके आधार पर तैयार किया गया 10 सूत्रीय प्रादेशिक सर्वोदय कार्य की घोषणा-पत्र पढ़कर सुनाया और बताया कि इन 10 सूत्रीय कार्यक्रमों के अलावा भी अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम इसमें जोड़े जा सकते हैं।

उन्होंने आगे कहा ‘गंगा स्वच्छता’ के विषय पर 18, 19 व 20 सितंबर, 2015 को धर्मसंघ, दुर्गाकुंड, वाराणसी में गोष्ठी हुई, जिसमें हमारी प्रदेशीय मंत्री श्रीमती जागृति राही ने स्थानीय साथियों के साथ सक्रियतापूर्वक भाग लीं। ‘गंगा स्वच्छता’ भी हमारे कार्यक्रम का एक अंग रहा है और रहेगा। आप से यह अनुरोध है कि प्रत्येक जिले के साथी अपने जिले का एक जिला कार्यक्रम घोषणा-पत्र बनायें व जारी करें। घोषणा-पत्र में ‘सर्वोदय जगत’ के 31 मार्च, 2016 तक ग्राहक बनाने की संख्या व समुचित मात्रा में साहित्य प्रसार को भी स्थान दें।

जिला सर्वोदय मंडल, बरेली के अध्यक्ष श्री भगवान सिंह दीक्षित ने बताया कि सूखे में

सरकार द्वारा दी गयी सब्सिडी भ्रष्टाचार के कारण किसानों तक नहीं पहुंची। उन्होंने आगे कहा कि बढ़ते प्रदूषण के लिए वृक्षारोपण आवश्यक है। एक सहभागी ने सुझाव देते हुए कहा कि सरकार को विद्यालयों के मान्यता देने की प्रक्रिया में ही वृक्ष लगवाने की शर्त भी रखनी चाहिए। स्थानीय अध्यापक साथी ने अपनी बात रखते हुए बताया कि बच्चों में वैज्ञानिक सोच लाना, सामाजिक ज्ञान देना, धन्यवाद, नमस्कार करने का संस्कार बढ़ाना चाहिए। उनमें समय का महत्व आत्मसात कराना चाहिए। यह सब विद्यालयों और घरों में महापुरुषों की जीवनी पढ़ने से ही सम्भव हो सकती है। बच्चों में इसकी प्रेरणा जगाने की जिम्मेदारी हम लोगों की है।

फर्रुखाबाद के श्री लक्ष्मण सिंह ‘एडवोकेट’ गंगा स्वच्छता व न्यायिक जांच की समय-सीमा निश्चित करने पर जोर देते हुए कहा कि ‘अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किये बगैर सर्वोदय नहीं होगा।’ आई. वी. आर. आई. के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. मुरलीलाल सारस्वत ने गांधी की रचनात्मक कार्यक्रमों को विस्तार से बताते हुए कहा कि आर्थिक समानता, स्त्री-विमर्श, छात्रों में नैतिकता, प्राकृतिक चिकित्सा, स्वास्थ्य, शिक्षा, मद्य-निषेध, खादी-स्वदेशी, ग्रामोद्योग, किसान-मजदूर, ग्राम-सफाई, सर्वधर्म समभाव, बुनियादी शिक्षा आदि सभी कार्यक्रम आज देश व समाज के लिए अत्यन्त ही ज्वलंत आवश्यकता हैं।

विष्णु इंटर कॉलेज के पूर्व प्रधानाचार्य ने समाज में सहिष्णुता की होती कमी पर चिन्ता जतायी एवं पर्यावरण के लिए हर घर व विद्यालयों में एक-एक वृक्ष लगाने पर बल दिया। बताया कि बेंगलुरु में मकान का नक्शा पास कराते समय वृक्ष लगाने की शर्त भी रहती है।

हिम्मत सिंह भंडारी ने नवयुवकों के बेरोजगारी पर चिन्ता प्रकट की। डॉ. महावीर सिंह ने गांधीजी के जीवन की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि कैसे गांधी, मोहन से महात्मा बने। डॉ. सुचित्रा डे ने कहा कि गांधी को जानना है तो सत्य, अहिंसा व

प्रेम को जानना पड़ेगा। विद्यालयों-महाविद्यालयों में गांधीजी को प्रत्येक विषय में एक अध्याय रखकर पढ़ाया जा सकता है।

सम्मेलन में विभिन्न ज्वलंत विषयों को लेकर छोटे-छोटे समूह बनाए गये ताकि चर्चा में सभी की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। प्रत्येक समूह-नायक चर्चा के उपरांत अपनी-अपनी बातें रखी।

‘महिला सुरक्षा’ विषय पर समूह-नायक डॉ. सुचित्रा डे ने दस बिन्दुओं—महिलाओं का शिक्षित होना, उनकी रोजगार के क्षेत्र में सहभागिता, महिलाओं को शारीरिक शिक्षा, बाल-विवाह एवं भ्रूण-हत्या पर रोक, महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भर एवं समाज में नारी का समान स्थान होना—पर प्रकाश डालीं। उन्होंने कहा कि यह सभी बाद की चीजें हैं, पहली बात तो है दृष्टिकोण का। अपने परिवार की महिलाओं को देखने की हमारी अलग दृष्टि रहती है और दूसरी महिलाओं को देखने की दृष्टि अलग।

प्रदेश सर्वोदय मंडल के मंत्री (संगठन) श्री भगवान सिंह ने वर्तमान शिक्षा पर चिन्ता जाहिर करते हुए कहा कि शिक्षा से आत्मज्ञान नहीं बढ़ा तो वह कूड़ेदान में फेंकने लायक है। सेवानिवृत्त जिला कृषि अधिकारी श्री पी. एन. गुप्ता ने जैविक खेती पर विस्तार से अपने विचार रखे और रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों की मिट्टी व फसलों पर पड़ने वाले कुप्रभाव का जिक्र किया।

इसके अतिरिक्त श्री लक्ष्मण सिंह ‘एडवोकेट’ ‘सत्याग्रह बनाम दुराग्रह’ पर, श्री राजनरायण ‘बेरोजगारी’ पर, डॉ. रविप्रकाश ‘वैश्वीकरण’ पर, श्री संदीप कपूर ‘सकारात्मक सोच एवं भ्रष्टाचार’ पर अपने महत्वपूर्ण विचार रखे। उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के महामंत्री श्री शिवविजय सिंह ने कहा कि सभी कार्यक्रम धराशायी हो जाते हैं, यदि आपस के संबंध सत्य व प्रेम पर आधारित न हो।

अंत में बरेली जिला सर्वोदय मंडल के मंत्री दीपक शर्मा ने धन्यवाद ज्ञापित किया और सम्मेलन समाप्ति की घोषणा हुई।

—डॉ. मधुसूदन उपाध्याय



**कविता एवं ग़ज़ल****भटका हुआ कारवां**

□ डॉ. गिरिजा कुमार माथुर

उन पर क्या विश्वास जिन्हें,  
है अपने पर विश्वास नहीं।  
वे क्या दिशा दिखायेंगे,  
दिखता जिनको आकाश नहीं।  
बहुत बड़े सतरंगे नक्शे,  
बहुत बड़ी शतरंज बिछी।  
जुटे हुए हैं वही खिलाड़ी,  
चाल वही, संकल्प वही।  
सबके वही पियादे फर्जी,  
कोई नया विकल्प नहीं।  
चढ़ा खेल का नशा इन्हें,  
दुनिया का होश-हवास नहीं।

दर्द बंटायेंगे क्या, जिनको,  
अपने से अवकाश नहीं।

एक बांझ बर्जित प्रदेश में,  
पहुंच गयी जीवन धारा।  
भटक रहा लाचार कारवां,  
लुटा-पिटा दर-दर मारा।  
बिक्री को तैयार खड़ा,  
हर दरवाजे झुकने वाला।  
अदल-बदल कर पहन रहा है,  
खोटे सिक्कों की माला।  
इन्हें सबसे ज्यादा दुख का,  
है कोई अहसास नहीं।

अपनी सुख-सुविधा के आगे,  
कोई और तलाश नहीं।

खत्म हुई पहचान सभी की,  
अजब वक्त यह आया है।  
सत्य झूठ का व्यर्थ झमेला,  
सबने खूब मिटाया है।  
जातिवाद का जहर किसी ने,  
घर-घर में फैलाया है।

वर्तमान है वृद्ध  
भविष्यत् अपने से कतराया है।  
उठती हैं तूफानी लहरें,  
तट का है आभास नहीं।

पृथ्वी है, सागर, सूरज है,  
लेकिन अभी प्रकाश नहीं।

(‘हमारी धरती’, मार्च-अप्रैल 2015 से)

**बशीर अहमद मयूख की ग़ज़ल**

वो और लोग हैं जिन्हें गैरों ने विष दिया,  
हमको तो आस्तीन के सांपों ने डंस लिया।  
हर सांस जिन्दगी की नीलकंठ बन गयी,  
हमने हवा के साथ में इतना ज़हर पिया।  
हमको अंधेरी रात से कोई गिला नहीं,  
हमसे सदैव सूर्य के बेटों ने छल किया।  
अक्सर मिली जो रोशनी इस तौर पर मिली,  
जैसे किसी मज़ार पे जलता हुआ दिया।  
वे देवता के द्वार पे चन्दन घिसा किये,  
घूँघट के पट खुले नहीं कैसे मिले पिया?  
ये क्या हुआ जो राम को बनवास मिल गया-  
सोना-हिरन ने आन के फिर से छली सिया!  
हम बेनकाब सामने आकर खड़े हुए,  
उठने लगीं जहान की नज़रें सवालिया।  
मित्रो ‘मयूख’ बज्म में बदनाम हो गया,  
दुखती रगों को छेड़ के जब ज़ख्म को सिया।